कूबरी

ब्रजभाषा खण्ड काव्य

राजश्री प्रकाशन, मथुरा

कूबरौ

(ब्रजभाषा खण्ड काव्य)

●

राम नारायण अग्रवाल

राज्यश्री प्रकाशन

मथुरा

ब्रजसंस्कृति के अनन्य भक्त

और उन्नायक

डा० सेठ गोविन्ददास जी

के

कर-कमलों में

सादर-समर्पित
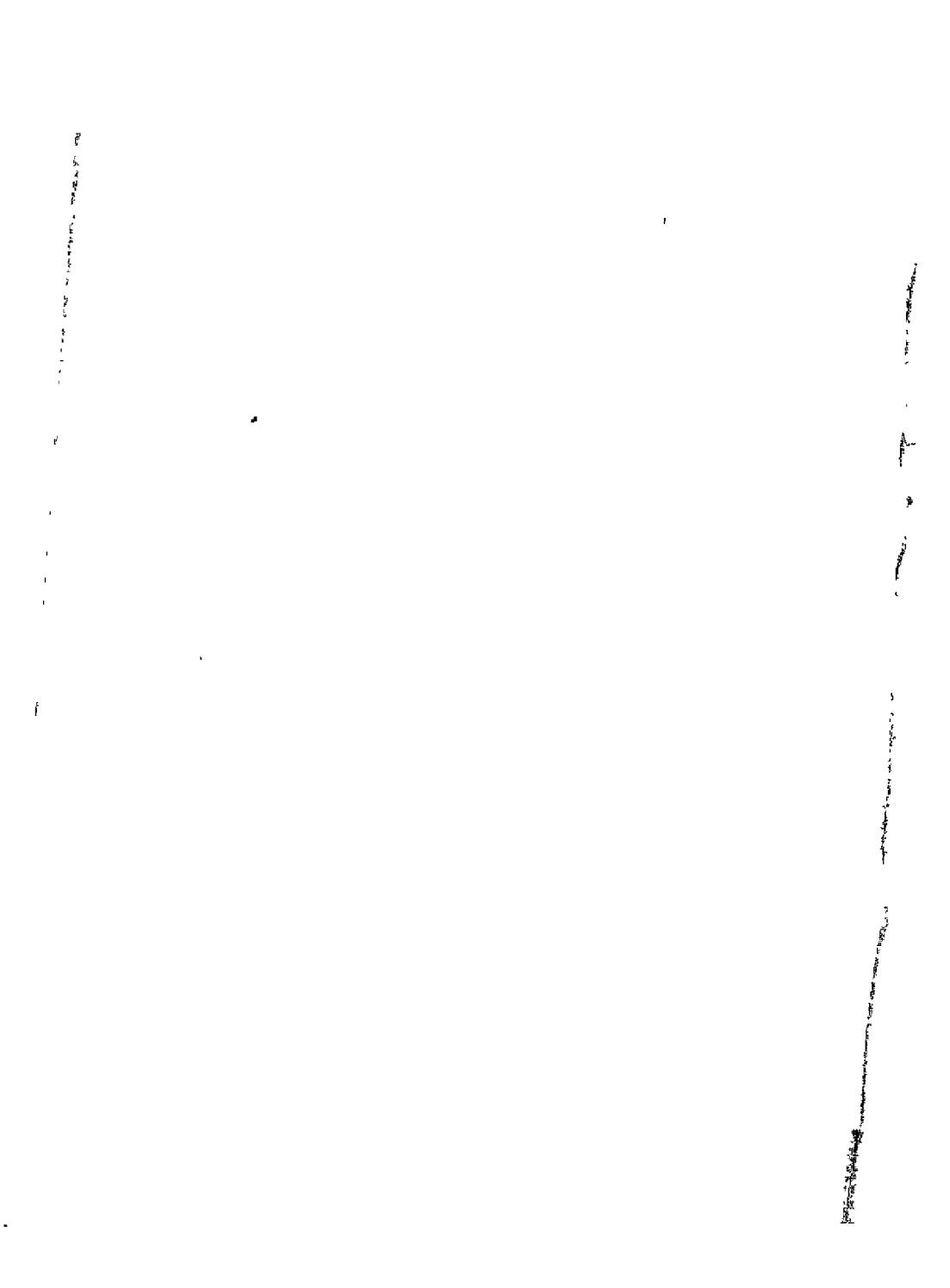
दो शब्द

'कूबरी' काव्य में श्री रामनारायण जी अग्रवाल ने अपनी जन्म भूमि मथुरा की ही कहानी ली है। कूबरी अयोध्या में भी थी, जिसका नाम मंथरा था। मंथरा का सुधार न हो सका। उसकी कुमंत्रणा से कैसे कैसे परिणाम निकले? श्रीराम ने सब कष्टों को सहर्ष स्वयं झेल लिया। श्री कृष्ण ने प्रेम देकर कूबरी को सुधार दिया। विकृति का बाह्य लक्षण भीतर के किस मनोवैज्ञानिक तथ्य को प्रकट करता है, कहना कठिन है। पर प्राकृतिक विषमता को समता में परिणत करने का उपाय है प्रेम। प्रेम और आनंद के स्वरूप ऐश्वर्यशाली श्री कृष्ण ही कूबरी का उपचार कर सकते थे। कुब्जा दासी, निरंकुश वैभव और अहम्मन्य भौतिक प्रभुता की सेवा में नियुक्त थी। हाथ उसके चंदन घिसते थे कंस के लिये और मन रमा हुआ था श्री कृष्ण के चरणारविन्दों में। गोविन्द ने उसकी सुन ली। उसे विकृत से प्रकृत और अन्ततः प्रकृत से उदात्त किया। आज के नगरों में बसी हुई कुबड़ी मानवता, जो वैभव और भौतिक शक्ति की दासी है, न जाने कब तक उबरेगी?

कुब्जा का मानवीय पक्ष भी है और हैं ऐतिहासिक और पौराणिक पक्ष। इन सब की ओर रामनारायण जी का ध्यान गया है। काव्य की कथा का कालगत विस्तार बहुत बड़ा है। द्वारका के निर्माण और ध्वंस के पश्चात बचे हुए यादव मथुरा आते हैं। तब कहीं कुब्जा श्री कृष्ण के चरणों में तिरोहित होती है। इस प्रकार पाठक को देश-काल का बहुत बड़ा खंड यहाँ देखने सुनने को मिलेगा।

ब्रज-भाषा-काव्य की परम्परा महान है। वह तो भगवान की रूप-माधुरी का महोदधि है। महोदधि का पूजन जलाञ्जलि द्वारा किया जाता है। इस प्रकार रामनारायण जी ने अपनी काव्याञ्जलि के द्वारा ब्रज-भाषा-काव्य को अपनी सादर पूजा समर्पित की है। ब्रज-भाषा-काव्य के प्रेमी कूबरी में यमुना की तरंगों के दर्शन करेंगे। यमुना के समान ही ब्रज-भाषा भी पतित पावनी है।

(बसंत पंचमी ६-२-१९६५) —नरेन्द्र शर्मा

'उपेक्षिता' का स्वागत

रोचक सुजान अघमोचक महान यह,
लोचक विधान, लोच लोचन के सामनें।
'लला कवि' भावते विभाव अनुभावते त्यों,
प्रघट प्रभावते सुचारित सुहामनें।
गुन गुन गामनें बड़ाई करी जासु की सो,
धरम धुरी न, धीर धारी धाम धाम नें।
राम स्याम आमने बिलोके वर वाम ने, यों-
कूबरी के कूब कों सुधारौ खूब राम नें।

'लला कवि'

कुबरी पै डारौ नहीं, पूरब कबिन प्रकास।
यह नवीन भावन भरी, रचना भर्यौ उजास॥
कूबरी मथुरा कौ रतन, जतन प्रसंसा जोग।
भगति विभूषन रस सरस, तप्ति लहैं गुनि लोग॥

—बालमुकुन्द चतुर्वेदी

अपनी बात

पाठकों को कदाचित स्मरण होगा कि विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के नवनीत हृदय में सर्व प्रथम साहित्य की उपेक्षिताओं के प्रति संवेदना का स्रोत उमड़ पड़ा था और उन्होंने एक लेख में इसकी चर्चा की थी। उसी आधार पर संपादकाचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उसी युग में 'सरस्वती' में छद्म नाम से एक लेख प्रकाशित किया जिसके परिणाम स्वरूप हिन्दी में गुप्त जी के 'साकेत' और 'नवीन' जी की 'उर्मिला' का आविर्भाव हुआ। परन्तु दुर्भाग्य से विश्वकवि तथा उनके बाद के किसी भी भावुक हृदय का ध्यान आज तक व्रज की उपेक्षिता कुब्जा के प्रति आकर्षित नहीं हुआ। सम्भवतः इसका कारण यह रहा हो कि कुब्जा, माता उर्मिला की भाँति किसी अभि-जात या कुलीन वर्ग की न थी। वह लोक जीवन में उगी एक ऐसी कोमल कली है जो सम्भवतः जीवन भर मुरझाई रहने के लिये ही बनाई गई थी। कंस की दासी के रूप में उसका जीवन-क्रम प्रारम्भ हुआ और भगवान कृष्ण का कृपापूर्ण संस्पर्श पाकर भी वह चार दिन खुलकर वसन्त की बहार का आनन्द नहीं ले पाई कि पतझड़ ने उसकी समस्त जीवन-उमंगों को अकाल में ही झड़ा डाला। साहित्य में कदाचित ही कोई ऐसी उपेक्षिता होगी जिसने अपने जीवन में ऐसी विडंबना भुगती हो जो कुब्जा के भाग्य में लिखी थी किन्तु तब भी आज तक किसी सदय हृदय ने उसके घायल मर्मस्थल में झाँकने की चेष्टा नहीं की। उसके त्यागमय जीवन की गरिमा का अंकन तो दूर

हमारे ब्रज के कवियों ने उस बेचारी असहाय नारी को गोपियों का पक्ष लेकर केवल पानी पी-पीकर कोसा ही है, उसका उपहास उड़ाया है। मथुरा के अन्तिम रीतिकालीन कवि स्वर्गीय श्री नवनीत जी ही एकमात्र ऐसे अपवाद हैं जिन्होंने 'कुब्जा पच्चीसी' लिखकर कुब्जा द्वारा गोपियों को उसके प्रति किये गये आक्षेपों का मुंह तोड़ उत्तर दिलाया था, परन्तु इस उपेक्षिता के अन्तर्मन की थाह लेने का अवकाश उन्हें भी नहीं मिल सका।

तीन वर्ष पहले की बात है, हम लोग गिरिराज परिक्रमा को गये थे। हम ब्रजवासी गिरिराज को भगवान ब्रजराज का साक्षात् प्रतिरूप मानते हैं। देश का संपूर्ण वैष्णव समाज गिरिराज महाराज में असीम श्रद्धा रखता है। सहस्रों यात्री प्रति वर्ष गिरिराज-परिक्रमा को देश के सभी भागों से पधारते हैं। उस समय मेरे साथ नन्दगाँव के श्री दानबिहारी लाल जी गोस्वामी थे जो बड़ी भावुकता से भ्रमर गीत के पुराने कवित्त-सवैयों का परिक्रमा मार्ग में सस्वर पाठ करते जा रहे थे। उन कवित्तों में बीच-बीच में बेचारी कुब्जा पर भी करारी चोटें पड़ रही थीं। मैंने यद्यपि वे छंद अनेक बार सुने होंगे, परन्तु न जाने क्यों गिरिराज की तलहटी के सुरम्य वातावरण ने उस दिन कुब्जा के प्रति मेरे हृदय को एक सहानुभूतिपूर्ण वेदना से भर दिया। परिक्रमा से लौटने पर भी कुब्जा निरंतर मेरे नयनों में नाचती रही। उन दिनों मैं कुछ अस्वस्थ था, रात्रि में नींद बहुत ही कम आती थी, इसीलिए सिराहने रखी पेंसिल से कागज पर अपने आप ही रात्रि में कुछ पंक्तियाँ पड़े-पड़े स्वाभाविक रूप से लिखी जाने लगीं।

इस प्रकार बीमारी के उन १०-१५ दिनों में जो कुछ भी लिखा गया था, उसी को क्रमबद्ध करके मैंने यह पुस्तिका उसी प्रदेश की

ब्रजभाषा में जिसकी रज में कुब्जा का उदय, विकास और अवसान हुआ था-जैसी बन सकी है, आपकी सेवा में प्रस्तुत करदी है।

अपनी ओर से मैंने इस पुस्तिका में रस, अलंकार, छन्द आदि का-चमत्कार उत्पन्न करने का कोई प्रयास नहीं किया है। कुब्जा के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के चक्कर में कथा में दुरूहता उत्पन्न करने, चिन्तन की गहरी डुबकी लगाने अथवा ऊँची उड़ानें भरने की भी मेरी कोई इच्छा नहीं रही। कुब्जा मेरे विचार से लोक जीवन में खिली और दलित वर्ग में पली एक कलिका थी। उसी दृष्टि से उसे सर्व साधारण के निकट लाकर खड़ी करने मात्र का मेरा यह एक आकिंचन प्रयास है।

इस काव्य में कुब्जा का पूरा चरित्र कल्पना के आधार पर खड़ा किया गया है या वह किसी अन्तः प्रेरणा से स्वयं उद्भूत हुआ है यह कहना मेरे लिए कठिन है, परन्तु इसमें पौराणिक सूत्रों को छोड़ा नहीं गया है। कुब्जा के समकालीन मान्य पौराणिक पात्र ही इस कथा में हमारे साथ रहे हैं। गर्ग जो यदुवंश और नंदवंश के पुरोहित माने जाते हैं। उन्होंने कृष्ण चरित्र और व्रज का विशद वर्णन किया है। वे कंस के राज-दरबार में थे और भगवान कृष्ण के नाम-करण के लिए वसुदेव जी ने कंस से छिपाकर उन्हें चुपचाप गोकुल भेजा था, इसका वर्णन भागवत में हुआ है। कुब्जा के पूर्व जन्म में सूर्पनखा होने का उल्लेख इन्हीं गर्गाचार्य ने अपनी 'गर्ग संहिता' में किया है। इससे स्पष्ट है कि गुरु गर्ग कुब्जा के सम्पर्क में थे और उन्होंने उसके मनोभावों को भली प्रकार पढ़ा था। इसलिए इस काव्य में कुब्जा की गुरु के रूप में उनकी ही अवतारणा की गई है।

भगवान कृष्ण और कुब्जा के संयोग-शृंगार का वर्णन करने की धृष्टता मैंने नहीं की है। मुझ में ऐसा कर सकने की शक्ति और सामर्थ्य नहीं है। कुब्जा के व्रजवास के प्रसंग का वर्णन मैंने पुराण के प्रकाश में की गई अपनी व्रज संबंधी शोध के आधार पर किया है

प्राचीन ब्रज मंडल जिसे भगवान कृष्ण का लीला-क्षेत्र कहा जाता है, दो भागों में बंटा था (१) वृहत् बन (२) वृन्दावन। यमुना सम्भवत: इन दोनों बनों की सीमा रेखा थी। वर्त्तमान गोकुल, महा-वन, बल्देव, मांट. मानसरोवर आदि उसी वृहद् बन के भाग हैं जहा भगवान कृष्ण के जन्म के समय नंदजी का निवास था। वृहद् बन मे जब कंस के उपद्रव बढ़े तो नन्दजी वहां से यमुना पार करके वृन्दावन चले आये। मेरे विचार से उस वृहत् वृन्दावन का आज का वृन्दावन तो एक भाग मात्र रहा होगा। वास्तव में वर्त्तमान कामा (काम्यवन) नन्दगाँव, बरसाना, गोवर्धन आदि का यह पूरक प्रदेश ही उस समय वृन्दावन था। भागवतकार ने वृन्दावन में गोवर्धन पर्वत की स्थिति का स्पष्ट उल्लेख किया है। उस युग में यमुना भी गिरिराज के निकट होकर ही प्रवाहित होती थी, इस तथ्य के भी अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। इस प्रकार भागवतकार ने जिस वृन्दावन से अक्रूर द्वारा भगवान कृष्ण के लाये जाने का उल्लेख किया है, हमारे विचार से वह वृन्दा-वन अवश्य ही वर्तमान कामवन या नन्दगाँव के आस-पास कहीं रहा होगा। कामवन को आज भी लोक-विश्वास के अनुसार प्राचीन वृन्दा-वन कहा जाता है। वृन्दा देवी का मन्दिर भी वहाँ है। वर्त्तमान वृंदावन की वृंदावन के रूप में मान्यता तो वास्तव में हमारे भक्ति युग की देन है। सर्व प्रथम महाप्रभु चैतन्य देव वर्त्तमान वृन्दावन की वन श्री पर विमुग्ध होकर यहाँ कृष्ण की सुधि में आत्म-विस्मृत होगये थे। बाद में उन्हीं के शिष्य अष्ट गोस्वामियों ने ब्रज पधार कर वर्त्तमान वृन्दावन के गौरव और स्वरूप के निर्माण की नींव डाली। इसी दृष्टि से कुब्जा के ब्रजवास के प्रसंग में मैंने पूरे वृन्दावन का वर्णन करने की चेष्टा की है जिसका अंतिम बिंदु राधिका रानी का सरस निवास स्थल बरसाना रहा होगा, ऐसी मेरी भावना है। इसी भावना के आधार पर कुब्जा के रथ-मार्ग का निर्माण हुआ है।

इस काव्य में मेरा अपना क्या है, मैं नहीं जानता ? एक छवि चित्र कुछ गुनगुनाता मेरे सामने घूमता रहा है और उसे मैने जैसा सुना या समझा है, सामर्थ्य के अनुसार भाषाबद्ध करने का प्रयास किया है। इसलिए इस काव्य में कदाचित भाषा ही मेरी अपनी है, परन्तु वह भी कुब्जा की नगरी मथुरा-की ही वर्त्तमान बोल-चाल की ब्रजभाषा है। मैंने अपने आपको रीतिकालीन भाषा के प्रवाह से बचाकर उसके वर्त्तमान रूप को ही ग्रहण किया है और उसे विशेष रूप से ब्रज-बोली के वर्त्तमान देशज शब्दो से सजाया है। ब्रजभाषा को वर्त्तमान काव्य भाषा के निकट लाने की मेरी चेष्टा रही है।

मेरे विचार से ब्रजभाषा हमारी राष्ट्रभारती हिन्दी का एक सबसे सबल अंग है। ब्रजभाषा के भक्ति और आस्था के संदेश तथा उनकी सहज स्निग्धता को हृदय में धारण किये बिना राष्ट्रभाषा हिन्दी बलवती नहीं रह सकती क्योंकि यही उसके हृदय का स्पंदन है। सूर और उनके उत्तराधिकारियों की थाती की उपेक्षा की भावना ने हमारे विचार से लोक-मानस से हिन्दी काव्य की दूरी को बढ़ाया है। ब्रजभाषा की यह विशेषता थी कि उसने उस युग में भी जब प्रचार और संचार के साधन आज की अपेक्षा कहीं अधिक सीमित थे, अपने को कभी लोक-मानस के संस्पर्श से दूर नहीं होने दिया जबकि आधुनिक हिन्दी-काव्य अभी एक विशिष्ट-वर्ग की आत्माभिव्यक्ति मात्र बनकर रह गया है।

यही कारण है कि हिन्दी के वर्त्तमान साहित्यकारों का ध्यान ब्रजभाषा की ओर न होने पर भी ब्रजभाषा काव्य-सरिता अभी भी यथावत प्रवाहित है। यह अलग बात है कि ब्रजभाषा के काव्य को आज प्रकाशन और प्रचार की सुविधा नहीं है। स्वर्गीय हरदयाल सिंह जी के 'दैत्यवंश' और 'रावण' महा काव्य उनके जीवन-काल में

ही छप गये थे, परन्तु उनके कई काव्य अभी अप्रकाशित हैं। श्री गोविन्द जी ने हाल ही में 'महारास' महाकाव्य की रचना की है जो एक महत्वपूर्ण कृति है, परन्तु अभी उसके प्रकाशन की कोई व्यवस्था नहीं हुई है। यह सब होते हुए भी ब्रजभाषा के समर्थ कवि आज भी बिना प्रकाशन और प्रचार की चिन्ता किये स्वान्तः सुखाय भाव से अपनी साधना में लीन हैं।

इसलिए आज आवश्यकता यह है कि हिन्दी काव्य के समग्र रूप को परख कर उसे महत्व दिया जाय और काव्य की समस्त शैलियों का उचित सम्मान हो। हिन्दी काव्य की पुरानी परंपरा के सभी रूपों और उनके विकास की स्थितियों का पूरा ब्यौरा लिया जाना चाहिए और उन्हें प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

विदेशों में अपने प्राचीन साहित्य की ओर पूरा ध्यान दिया जाता है। पुरानी इंगलिश में लिखी बाइबिल सभी पाश्चात्य देशों का कंठहार है। पुरानी अंगरेजी में लिखे गये चौसर के काव्य को क्या अँगरेजी कभी भूल सकेंगे, परन्तु हमारी हिन्दी में अभी तो सूरसागर तक का संपादन नहीं हुआ है फिर उसे विदेशों के समक्ष रखने की बात तो सोचना भी अभी दूर की बात है। यदि 'कूबरी' से हमारे पाठकों को ब्रजभाषा के उस साहित्य वैभव का स्मरण हो सका तो मैं अपने प्रयास को धन्य मानूँगा।

श्रद्धेय 'नवीन जी' ने मुझे कई वर्ष पूर्व ब्रजभाषा में एक खंड-काव्य लिखने की प्रेरणा दी थी। इस पुस्तक के प्रणयन से उनके सामने नहीं तो उनके बाद ही उनकी आज्ञा का पालन हो रहा है, इसका मुझे संतोष है। मैं उन्हें इस अवसर पर सादर अपनी प्रणामाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

इस ग्रंथ के प्रकाशन में श्री मोहन स्वरूप जी भाटिया ने बड़ा श्रम और सहयोग किया है। बिना उनके सहयोग के यह पुस्तिका न

जाने अभी कब तक योंही पड़ी रहती। उनके लिये मैं किन शब्दों में धन्यवाद दूँ? श्री हृषीकेश जी चतुर्वेदी व अन्य मित्रों ने इसे देखा और अपने सुझाव दिये। मैं सभी मित्रों, गुरुजनों और सुहृदों का आभारी हूँ जिनकी प्रेरणा और सद्भावना से यह पुस्तिका आज इस रूप में आपके समक्ष सादर प्रस्तुत है।

आचार्य नन्ददुलारे जी वाजपेयी, श्री नरेन्द्र शर्मा तथा अन्य महानुभावों और मित्रों ने इस पुस्तक को पढ़कर मुझे जो प्रोत्साहन दिया है, उसके लिये मैं उन सभी का हृदय से अनुगृहीत हूँ। आचार्य वाजपेयी जी ने व्यक्तिगत परिचय न होते हुए भी इस रचना को पढ़ा और इसका स्वागत किया, यह मेरे लिये सौभाग्य की बात है।

विनीत:

रामनारायण अग्रवाल

दूबरी हुती जो कबौं कूबरी उपेक्षिता सी,
ताहि कवि राम ने अनूप करि दीनौ है ॥
ऐंच कै चरित्र की पवित्रता विचित्र मित्र !
चित्र खींच गौरव गुमान भरि दीनौ है ॥
छन्द लै विभिन्न खंड काव्य हू अलंकृत कै,
नव सर्ग माँहि नव रस जरि दीनौ है ॥
एक-एक पद कों उठाइ रस घोरि-घोरि,
काव्य की सुधा में बोरि-बोरि धरि दीनौ है ॥

—प्रियतम दत्त चतुर्वेदी "चच्चन"

धन्य गोपा, उर्मिला भी धन्य है सौ बार।
कवि-कलम से कीर्ति उनकी अमर अपरंपार ॥
पर कुरूपा कूबरी की कथा करुणापूर्ण।
कवि-कलम से कल तलक भी जो न थी संपूर्ण ॥
आज अपने रूप में कर भाव का शृङ्गार।
वह मुखर ब्रजभारती में हुई पहिली बार ॥

—जीवन प्रकाश जोशी

..कूबरी

मंगलाचरण

मोर-पच्छ[1] धारे उरकच्छ में प्रतच्छ राज,
मोर पच्छ कीजिये, सम्हार काज दीजिये।
असरन सरन! चरन में सरन दीजै,
सारदा समेत नाथ जन पै पसीजिये॥
'राम कवि' जानत न छंद, रस, रीति, भेद,
ए हो! रसराज के सिंगार, सार[2] कीजिये।
कुबरी कुअंगिनी, सुरंगिनी करी ही जासों,
ताही कृपा कोर सों इतै हू चितै-लीजिये॥

१—मयूर पक्ष २—सँम्हाल

पूर्व कथा

(१)

बन पंचवटी बट के तट राजत, पर्णाकुटी में लखे सुखदाई।
तिन्हें मानि लियौ पति ता दिन सौं, मरजाद[1] के बंध बँधे रघुराई॥
मनुहार करी, पचि हारि गई, भरि कैं भुज, अङ्क न भेटन पाई।
अभिलास सोई भरपावन कारन, जाई ये राम भये जो कन्हाई॥

(२)

अरपी जब देह, निहार सनेह, करी जो कृपा तो कुरूपा करी।
नकटी लखिकैं नकटी दुनियाँ, नहि काम-घटा की पटा पै परी॥
कर टेढ़, दयौ धर पीठ पै भार, जो जन्मी दुबारा भई ये नरी[2]।
नहि ताकि सकै कोउ ता तन कौं, तेहि कारन ताहि करी कुबरी॥

१—मर्यादा. २—नारी

प्रथम सर्ग

जन्म और गुरु-दर्शन

(१)

दोहा—कालिन्दी के कूल जहँ, कलिधौतन के धाम।
जन्म-भूमि जदुराज की, जाई कुबजा बाम॥

(२)

जनमी यों सुता ये त्रिभगी अरूप, भये परिवार के लोग दुखारे।
धनहीन के गेह में कन्या कुरूप, जो होय, करे फिर कौन निभारे॥
रहे जाति के माली[1] बिना धन माल, दयानिधि और हू संकट डारे।
तेहि छोड़ि अनाथिनी बाल अकाल ही, मात-पिता दोऊ स्वर्ग सिधारे॥

(३)

निज पेट की आगि बिहाल ह्वै बाल, दुखी अँसुआ यों बहाती रही।
दुनियाँ यह सुक्ख को संगिनी है, दुखिया कूँ सदाँ लतियाती रही॥
'कवि राम' व्यथा की कथा मन में, सो समेटे तहाँ भरमाती रही।
हँसती जगती रही कूबर देख कै, लौन[2] जरे पै लगाती रही॥

(४)

नृप कंस के राज नृसंस प्रजा, धन के मद में मदमाती गई।
बल के उनमाद में है उनमुक्त, मतंग सी वो परघाती भई॥
रहि संग नवेलिन के रसकेलि में, आगे ही पाँइ बढ़ाती गई।
नहिं दीन की कोऊ सुनाई रही, कुबरी दुगनों दुख पाती गई॥

१—ब्रजवासीदास जी ने 'ब्रज-विलास' में कुब्जा को माली जाति की लिखा है। २—नमक

(५)

दुबरी मन की कुबरी तन की, मथुरा की गलीन लली फिरती ही।
डरते हुते लोग निहारि कै ताहि, औ लोगन देखि कै सो डरती ही॥
नृप कंस के राज में दीनन की, दुखियान की कौन कहाँ गिनती ही।
कूब के भार सों ऊबी भई, मन कूबरी बाल हरी भजती ही॥

(६)

नृप कंस के त्रास गोविन्द को नाम पै, बाहर कंठ के काढ़ि न पाई।
अति भोरी किसोरी भई कुब्जा, परपंच में रंच न राँचन पाई॥
सो कुरूप की ढाल सों ढाँकी भई, जग-आखर एक न बाँचन पाई।
रस-रंग. उमंग तरंगन में, 'कवि राम' न कूबरी नाँचन पाई॥

(७)

नृपराज की नाज भरी नगरी, नविकै सुर-कन्या जहाँ चलतीं।
बहु किन्नरी सुन्दरी नारी बनीं, दविकै भरी त्रास तहाँ चलतीं॥
बर अंधक[1] वंस उजागरी नागरी ही, नवरंगी वहाँ चलतीं।
वे, कलंकिनी अंग सों हीन तहाँ, कुबरी चलती तौ कहाँ चलती॥

(८)

यों अति पीड़ित है सब सों, यह बाल बसी जमुना-तट जाई।
सीकन को परकोट कियो अरु, फूँस बटोरिकें ओट बनाई॥
लोल हिलोर कलिंदजा की सों, भई कुब्जा की सनेह सगाई।
क्रीड़-लगी कछुआन की केलि में, भूलि गई जग की जड़ताई॥

१—यादवों की शाखा जिसमे कंस का जन्म हुआ था।

(९)

इमि सो दुखिया अपने दुख के दिन, माँगि के भीख बितावन लागी।
जमुना-जल की, अँसुआन की धार सों, स्यामता और बढ़ावन लागी॥
बचि के जग दीठि सों भानुजा को तट, साँझ सबेरे बुहारन लागी।
घनस्याम-प्रिया की कृपा लहिकैं, वर साँवरे रंग में राँचन लागी॥

(१०)

यदुबंसिन के उपरोहित गर्ग, तहाँ स्नान कों आवते हे।
नृपराज सों दीठ बचाय वहाँ, हरि कौ नित ध्यान लगावते हे॥
पर के दुख में 'कवि राम' भनें, मुनि माखन से पिघलावते हे।
तन की सुघराई न आँकते हे, मन की मृदुता पहचानते हे॥

(११)

तिनकों येह बाल खड़ी तट पै, मन ही मन में सिर नावती ही।
निज जाति कों हींन बिचारि संकोच सों, भूलिहु पास न जावती ही॥
वह पूजन हेतु प्रसूननि लै, गुरु कों तट पै धरि आवती ही।
'कवि राम' निहार ये कौतुक नित्य, मती मुनि की चकरावती ही॥

(१२)

एक दिना गुरु आय सकारे ही, घाट के पास लुकाय गये।
देखि त्रिभंगिनी की यह भक्ति, आचार्य हिये उमगाय गये॥
घाट कों झारि औ लाय प्रसून, जबै कुब्जा ने लगाय दये।
गर्ग तहाँ तबै आय गये, लखि बाल के प्रान सुखाय गये॥

(१३)

"किनकी तू है जाई, कहाँ तू रहै, समुझाय कहाँ तू पली हे लली।
जग-पंक में म्लान मृनालिनी सी, न खिली, मुरझी सी कली हे लली ॥
साज सँवारि के साँज यहाँ, चुपचाप क्यों जाति-चली हे लली।
रजधानी में या असुरेसन की, सुर कन्या सी लागे भली हे लली ॥"

(१४)

"अपराध छमा गुरुदेव करें, मैं मलीन हूँ जाति न मेरी भली।
जग-मात कलिन्दजा ही मम मात हैं, पी जिनकौ जल हूँ मैं पली ॥
इनके तट के तरु ही हैं पिता, करें पालन दै फल, मूल, फली।
नहिं होय कुसौन निहारि कै मोय, बिचार ये जात यहाँ ते चली ॥"

(१५)

निज पीठ पै कूब कौ भार लिये, जग भार बनी फिरूँ, खाती धता।
भगवान् ने दीनों कुरूप शरीर, भई कछु मो सों है ऐसी खता ॥
'कवि राम' अनाथ सदा के रहे नहिं जानों मैं कौन है माता-पिता।
जग की दुतकार. सुन्यों करती, इक आपने आज कही है सुता ॥

(१६)

जगती में पड़ी जगती-तल सों रहौं दूर, कटी तरु की सी लता।
हमसों न करी ममता जग नें, हमने न करी जग सों ममता ॥
'कवि राम' हौं काठ सो, जो मझधार में. खाय थपेड़े रहै भ्रमता।
नहिं थाह में पायौ कबौ बिसराम[1], न रम्य किनारे कौ पायौ पता ॥"

१—विश्राम

(१७)

जग की जलधार किनारे बिना, तट घाट सभी छलना-भ्रमना।
जग में फँसना दुख में फँसना, जग से बचना भ्रम से बचना॥
बनि पंकज सौ, रहि पंक सों दूर, यहाँ बसना है सही बसना।
जग में रमना भ्रम में रमना, रमना एक राम में है रमना॥

(१८)

रमि राम में पाऊँ कुबाम न मैं, आय तिहारी गही सरना।
रमना तट रम्य कलिन्दिजा के, इनकौं जपना ममता करना॥
तट, घाट, कगार, निहारि, 'ये बंक, मैं बंक,' तजौं तन की भ्रमना।
रस-रंग तरंगिनी तालन पै, बसि गावति हौं 'जमुना-जमुना'॥"

(१९)

जगती के प्रपंच सों दूरि बसै, बस या ही सों तू मन-भावनी लागै।
सब तोय कुरूप अनारी कहैं, पर मोय सुता सुखदाइनी-लागै॥
धरें सुन्दरता कौ जनाजौ है पीठ पै, तासों हमें तू लुभावनी लागै।
चमड़ी की लुनाई में लोन नहीं, 'कवि राम' हमें तो घिनावनी लागै॥

(२०)

कछु तू मति सोच करै मन में, वरदान कुरूप ये तेरौ भयौ।
निज कूब की ढाल सों ढाँकी रही, नहिं तोपै दुलारे कौ फेरौ भयौ॥
सब बास सों बासना की बचि कै, जमुना-तट पै जो निभेरौ भयौ।
नहिं 'काम' कौ तो में बसेरौ भयौ, उर राम-कृपा कौ उजेरौ भयौ॥

(२१)

अब संग हमारे चलौ ह्वै निसंक, तुम्हें नृप कंस पै लै हम जाइ हैं।
करवाय अजीविका राउ सों नित्य के, जीवन-भार को भार हटाइ हैं॥
मति रंचक सोच करौ मन में 'कवि राम' सदाँ दुख नाँय टिकाइ है।
घनस्याम जबै नभ में गहराय हैं, ग्रीषम के दौर न रोके रुकाइ हैं॥

(२२)

धन्य भई गुरुदेव! कृपा के कहे मृदु-बैन हमें जो उबारी।
चाहत मैं नहीं राज अजीविका, दीजिये मंत्र मिलें ज्यों खरारी।
कंस के कोष अधर्म की संपति, का करिहौं लै, भली मैं भिखारी।
रंकिनी ही मैं भली, गुरुदेव! दया की रहै यदि दीठि तुम्हारी॥

(२३)

निज धर्म में बुद्धि तिहारी निहारि कैं, प्रीति जगी मम हीय दुलारी।
श्रम सों उपजाई अजीविका में पर, पाप न रंच कबौ है कुमारी॥
करि चाकरी जो मिलि हैं तुमकों, तेहि पाय के पालौ शरीर पियारी।
नृप कंस के ही मिस एक दिना, मिलि जायँगे तोय कृपालु खरारी॥

(२४)

सब ऊँच औ नीच विचारि कें ही, यह बुद्धि हमारी में बात जमी है।
रहै पुन्य की बेलि सदा ही हरी, पर पाप की बेलि सदा न थमी है॥
करि कैं श्रम सों तुम पालहु पेट, सु भजौ हरि कूं फिर कौन कमी है।
दिन एक-समान सदा न रहैं कहुँ सूखा परै तौ, कहूँ पै नमी है

(२५)

यो समझाय कैं, कूबरी संग लै, गर्ग घुसे मथुरा के सिमाने
कोऊ हँसे लखि कैं इनकूँ, कोऊ आँखि ही आँखिन में मुसकाने
औचक से कोऊ देखें चढ़ाय कै भौंह, कोऊ मुख फेरि पराने
गर्ग कूँ लोग प्रनाम करें, पर कूबरी देखि सबै चकराने

(२६)

कंस के जान पुरोहित पै, कोऊ सामने म्हौं नहीं खोलन पायौ
अंग सों हीन बा कूबरी कों, दरवान न द्वार पै रोकन पायौ।
बालक दूरि हटे डरि कें, कोऊ हाथ सों कूबर ठोक न पायौ
कंस के आगें कुरूपिनी कों, करी जाय खड़ी, कोऊ रोक न पायौ।

(२७)

बह स्वर्ण मयी ही सभा नृप की जहँ, लाल जबाहर झालर सोहैं
लसे हीरन के नृप के सिर छत्र, किरीट की दीप्ति निसाकर मोहैं।
सरदार सुरेस से ठाड़े जहाँ, दोऊ बाँधि कै हाथ सदा रुख जोहैं
लखि सोभा सभा की अवाक भई, कुबरी गई भूलि कहाँ हम को है।

(२८)

द्वारे पै कुवलिया मतंग मदमत्त राजै,
धौंसनि की घोर रोर, अम्बर हिलत हैं।
केसी तृणावर्त, अघ, पूतना प्रलंब, दम्भ,
राखत हैं कोट, चोट सहि को सकत हैं॥
घूरकोट, ताम्रकोट, लोहकोट, चाँदीकोट,
सप्त परकोट, ओट नृप की करत हैं।
मथुरा-नरेस की सभा की संपदा कों देखि,
साख सुरराज की पै, गाज-सी गिरत है॥

(२९)

कहूँ गजराजन की घोर रोर घन घोर,
घोड़ा हिंहिनायँ, कहूँ ऊँट की कतार है।
काल-से कराल बिकराल भट देखियत,
हाथन त्रिसूल ब्रजघात हैं दुधार है॥
शत्रु-दल दलन बिकट भट मल्ल भिरें,
कर गदका है, के पटा हैं, तलवार हैं।
वाहिनी विसाल कंसराज की अगाध-सिंधु,
आगम अथाह है, न जाकौ आर-पार है॥

(३०)

साल औ दुसालन में मानिक की माला, बाला-
सुन्दरी रसाला, लिये सोम-रस प्याला हैं।
स्वर्न के सिंहासन हैं, आसन नगीना जड़े,
हीरन के धारे हार, बैठे वीर आला हैं॥
चित्रित विचित्र चित्र, मनि-मय खभनि पै,
चाँदनी चँदोबा हैं, वितान-जाल माला हैं।
हाथ बाँधे दिग्पाल, लखें रुख ह्वै बिहाल,
काल हू के काल, कंस, मथुरा-नृपाला हैं॥

(३१)

पुखराज पन्नग के उच्च स्वर्ण आसन पै,
सोहें नृप कंस नाँचै किन्नरी नरी समाज।
मद में मदान्ध भये अन्धक नरेन्द्र राजें,
मुष्टिक, चाणूर, सल तोसल सुभट साज॥
रौबदार, छड़ीदार, चोबदार जहाँ-तहाँ,
रुख कूँ निहारि करें राजकाज भाज भाज।

(३१)

सहज सिहाय कैं हूँ देखत नृपेन्द्र जाय,
सोऊ काँपि जाय, जनु आय कै पड़ी है गाज ॥

(३२)

बंदी जस गावें, खड़े बिरुद सुनावें, भाट,
चमर डुरावें बारी, चेरी छत्र लै खड़ी।
गर्गाचार्य दाहिने हैं अक्रूर बाँये बैठे,
आगे यदुवंशी करें जल्पना बढ़ी चढ़ी,
देस के, विदेसन के, राजे, नृपराज आगे।
झिझकत आवें भेंट धरत बड़ी बड़ी।
कंजमुखी कंजन की पंखी कर कंज लिये,
कनक-लता सी झलें पवन खड़ी खड़ी ॥

(३३)

कूबरी कुरूपिनी सभा के मध्य ठाड़ी देखि,
सब सरदारन के चित्त चकरायगे।
नवल नवेलिन के कल्प-वृक्ष-बेलिन से,
अधर सुखायगे ज्यों पल्लव झुरायगे ॥
सूर सकपके, कोऊ सोचत हिराने हीय,
'अब गुरु गर्ग के बुरे हैं दिन आयगे'।
भृकुटी उठाय जो नृपाल नें निहारी, कियो,
गुरु के लिहाज भौंह तौ हू खम खायगे ॥

(३४)

कहें नृप कंस "ये घिनौनी सी कुरूप कौन ?
लाये हो कहाँ सों गुरु ! करनौं का याकौ है ?
कीन्हों अपराध जाने होय सो बताओ हमें,
यम के यहाँ से याकौ आयौ-लगै हाँकौ है ॥"

(१०)

बोले गर्ग "ये है दीन, कीजिये कृपा की कोर,
असरन सरन नृपेन्द्र बीर बाँकौ
काहू नें न ताकौ जाकौं, तेरौ द्वार झाँकौं नृप,
कोई है न जाकौ, ताकौ तू ही एक ताकौ

(३५)

जाकों तैं उबारौ, ताके सोक ने किनारौ कियौ,
जेहिं तैं न ताकौ, ता कौ सुरपुर गौन
जेहि तें सम्हारौ ता कौ सबने सहारौ दियौ,
जेहिं ते न राखौ, ताकों तकत न पौन
जेहिं तैं सुहायौ-ताकों सोने सों सजायौ आप,
जेहिं तैं न भायौ-ताकौ धूरि को न भौन
राजा कसराज! तोय हेरि, हारि हरि पास,
बेर-बेर बूझत कुबेर नाथ कौन

(३६)

सपति सुमेर की बसै है नगरी में त्यारी,
राज में तुम्हारे आज सब ही सनाथ
दैन्य दुख दारिद निकारि पुर बाहर तैं,
सब कों सुरेस सौ बसायौ निज हाथ
एक ही कलंक अबसेस ये दरिद्रता की,
राज में बचौ है, जाकौ दूसरौ न साथ
अचरज मोय, जाते राजन्! दिखाई तोय,
पारस-पुरी में लोह, कुबरी अनाथ है

(३७)

"धन्य गुरुदेव"! आप सोबतौ जगायौ मोय,
कुबरी दरिद्रता की छाँह छू न पावेगी।

(३७)

मन सों हमारी ये करैगी सिवकाई जो प,
आय कै रमा हू याहि मस्तक झुकावैगी ॥
आज सों घिसैगी यह चन्दन हमारौ नित्य,
साँझ औ सकारे मम मस्तक चढ़ावैगी ।
एक स्वर्न मुद्रा पाय नित्य ही करैगी चैन,
चेरी ह्वै हमारी, ये परम पद पावैगी ॥"

(३८)

"धन्य मथुरेस बल बढ़तौ हमेस रहै,
कीनी कृपा-कोर भूलि कबहु न पाऊँगी ।
मृग मद गंध भरौ केसर कपूर पूर,
सोंधन बसाय नित्य चन्दन चढ़ाऊँगी ॥
जग दुख दारिद कौ तरि कें अथाह सिंधु,
भार लै कुरूप कौ, निभाये निभ जाऊँगी ।
गुरु की दया सों जब आपकी मया है देव,
आपके सहारे मैं परम पद पाऊँगी ॥"

(३९)

करिकै नमन नृप कंस कों मन में कछू अकुलात-सी ।
घर लौटि कें कुबरी चली, हरषित कछू दुखियात-सी ॥
बैभव लगौ मथुरेस कौ, तेहि स्वप्न-जैसी बात-सी ।
दिन-सौ कवौ दरसन-लगौ, दरसी कबौं तेहि रात-सी ॥

(४०)

कुबरी यों चेरी भई, नृपति कंस की जाय ।
ब्रजभाषा गाथा सरस, कही 'राम कवि' गाय ॥

उद्बोधन

(१)

सो०— मन निकसत घनस्याम, तन सों सेवति कंस कों।
रही कूबरो बाम, मथुरा में चन्दन घिसत ॥

(२)

रोला- बड़े प्रात उठि, जमुन-न्हाय नित हरि कों ध्यावै।
फिर, घिसि चन्दन, दिव्य-गंध सों नृपहिं रिझावै॥
लौटै, तौ करि जुगति पेट की अगिनि बुझावै।
करिकें अक्षर-ज्ञान समय निज सेस बितावै॥

(३)

यों थोरे ही दिनन खिली ताकी तरुनाई।
मिट्यौ दैन्य दुख क्लेस, चढ़ी कछु मुख अरुनाई॥
लगी धर्म-आख्यान पढ़न सो अवसर पाई।
समझन लागी ऊँच-नीच, जग कृपा रुखाई॥

(४)

साँझ सकारें नित्य सभा में लागी जावन।
दरबारन की रीति-नीति लागी पहिचानन॥
कंस-राज की चेरि, लगी दुनियाँ तेहि मानन।
नृप के समुझि समीप, मान दै लगी रिझावन॥

(५)

चंदन लै निज हाथ कूबरी जाती ही जब।
नगर-निवासी नेह जनावत हे तापै सब॥
कोई आगें आय पास तेहिं लगे बुलावन।
कोई अपनों दुख विनय करि लगे सुनावन॥

(६)

कोऊ कहतौ "आप अहौ गुन-गन की खानी।
जो नहिं होतौ कूब अबसि होतीं पटरानी॥"
हँसि कैं करतौ कबहुं कोउ कछु और ठठोली।
कोऊ कहतो 'बहन' 'बुआ' कोऊ मिठबोली॥

(७)

कहते बनिक बुलाइ, "अरी! सारी यह लीजै।
पहनों, फारौ याहि-मोल पै ध्यान न दीजै॥"
लगे जौहरी कहन, कि "ये आभूषन धारौ।
कनक-कङ्कना बिना न नृप के भवन पधारौ॥"

(८)

यों कुबजा कूँ सबहि आपनी लागे मानन।
बात-बात में दाँत ताहि लागे दिखरावन॥
भौंहें, नाक सिकोरि रहे जे आँखि बचावत।
चिकनी-चुपरीं सरस, तेहि अब बात बनावत॥

(९)

"बनी-बनी' की बनी आजु जगती यह संगिनि।"
समुझन-लागी भेद मनहिं मन खूब 'कुअंगिनि'॥
सब ही सों सो लगी बात्त मीठी बतराबन।
सीखि गई जैसे सों तैसीहि बात मिलावन॥

(१०)

ताके मथुरा माहिं दिवस यों बींतन लागे।
पर, वे जग के मीत, ताहि निज मीत न लागे॥
मन ही मन कछु घुटन लियें-सी, घुटती जाती।
पर, या कौ कछु भेद अबहि सो समझ न पाती॥

(११)

एक दिना गुरु गर्ग जबै आय जमुना तट।
तब कुबजा ने जाय चरण में सीस धर्यौ झट ॥
कही "आपकी कृपा फली है सब विधि गुरुवर!
बदलि-गई है दीन-दसा, तव कृपा कोर पर ॥'

(१२)

पर, यह भेद न, नाथ! समझि मेरी कछु आवत
मम अभ्यन्तर नित्य न जानें क्यों अकुलावत
राग-रंग यह हँसी-खेल नहिं नेकहु भावत
बसौं जाय एकान्त, भाव मन में यह आवत

(१३)

सूनो उजरौ जहाँ चारिहूँ ओर लखावत।
जग ललचावतु, किन्तु मोय मधुपुरी न भावत ॥
खोयौ-खोयौ कछू यहाँ अपनों दरसावत।
हँसन चहत, पै कमल हिये कौ है मुरझावत ॥

(१४)

सुनि कुबरी की बात गर्ग थोरे मुसिक्याये।
फिर कुबजा कों नेह-सहित यों बचन सुनाये ॥
"यह पुर तो-से भगत-जनन के हेतु नहीं है।
लिपसा-सागर यहाँ धर्म कौ सेतु नहीं है ॥

(१५)

जहाँ पाप है, तहाँ तहाँ ताप ही बसि है अविचल।
बिना आत्म-बल सबहि देह कौ थोथौ है बल ॥
यहाँ पाप कौ घड़ा करन लाग्यौ है छल-छल।
कंस-राज कौ राज सकैगौ अब न और चल ॥

(१६)

सूरसेन की भूमि घटा घिरि-आईं कारी।
चन्द्रबंस में छाय रही अजहूँ अँधियारी ॥
पै जा दिन ब्रजनंद ज्योति निज बिखरामिगे।
ता दिन ये तम-तोम बिखर छन में जामिगे ॥

(१७)

आज बताऊँ तोय भेद सुन यह, सुकुमारी।
जनमे हैं ब्रज आय, नन्द के भौन मुरारी ॥
निर्गुण अलख अरूप, रूप धरिकें हैं आये।
हरिबे कौं भू-भार कृष्ण भू पर प्रगटाये ॥

(१८)

कंसराज के सुभट, बीतिबे लगे अभीते।
नन्द-नंदन नहिं छोड़ि रहे, दुष्टन कौं जीते ॥
गोकुल पहुँचे सूरवीर, नृप के हैं जेते।
सोवत सद्‌गति पाय-पाय सुरपुर हैं ते ते ॥

(१९)

यों जब पापी दुष्ट कंस के खपि जामिगे।
जसुदानन्दन अबसि तबहि मथुरा आमिगे ॥
मारि कंस कूँ मर्दि-मर्दि भू पै डारिगे।
ये असत्य के जलद न तबहि टिकन पामिगे ॥

(२०)

जा दिन वे सच्चिदानन्द मथुरा चलि ऐहैं।
मिटै धर्म की ग्लानि, भक्त-जन सब सुख पैहैं ॥
मदन-मुरारिहिं अजहूँ हिये जो सुता बसै।
नृपति कंस मिसअबसि मनुज-जीवन फल पैहैं ॥

(२१)

या सों, भज तू मुरलीधर गोवर्धन-धारी।
वृन्दा-विपिन बिहार करन, गोपी बनबारी॥
रास-बिहारी, मातु जसोदा अजिर-बिहारी।
पीताम्बर धर, अधर मुरलि धर,नट बपु धारी॥

(२२)

गोपी-प्रिय गोपाल लाल, गोकुल दृग-तारे।
कारी कमरी, गले माल गुंजन की धारे॥
श्री हलधर के भ्रात, जसोदा-नन्द-दुलारे।
साधिगे सब काज तुम्हारे और हमारे॥

(२३)

या ते, तुम सब भूलि जगत की बिपदा-बाधा।
भजो सदा घनस्याम मनोहर, मोहन-राधा॥
हैं बस वे ही साध्य एक, बाकी सब बाधा।
तरिहौ उनके भजें जगत कौ सिंधु अगाधा॥

(२४)

सुनि गुरु के ये बैन, चैन कुबरी कूँ आयौ।
स्याम-राम कौ नाम सुनत, नैनन जल छायौ॥
प्रेम पुरातन नयौ भयौ, ह्वै गयौ सबायौ।
बन-बन भटकत,मनहुँ राज-पथ पथकहि पायौ॥

(२५)

बार-बार गुरु चरन-रेनु मस्तक पैं धारत।
बोली गद्‌गद्‌ बैन, पुलकि तन गिरा उचारत॥
"धन्य-धन्य गुरुदेव ! बताये तुम 'जग-तारन'।
घिरी भँवर में नाव देखि दीन्ही पतवारन

(२६)

"सब तजि,अब मैं सदा स्याम में लौ लाऊँगी ।
जग की दौ की लौ न कबहुं अब धधकाऊँगी ।।
निसि-बासर बस नन्द-नन्दन ही कौं ध्याऊँगीं ।
जो पाऊँगी उन्हें, आपके गुन गाऊँगी ।।

(२७)

सब छोड़ि जग के रंग,यों वह स्याम-रंग में रंग गई ।
बढ़ती गई ज्यों स्यामता, ज्यौं आतमा उजरी भई ।।
'कवि राम' दिन-दिन कूबरी,केसब कन्हैया में रमी ।
तब त्रिभंगिनि के त्रिभंगी उर, त्रिभंगी छबि जमी ।।

(२८)

ज्यों हाथी के दाँत, भीतर बाहर भिन्न हैं ।
त्यों कुबिजा के नाथ, भीतर हरि, बाहर 'नृपति' ।।

पूर्वानुराग

(१)

यों कुबजा ने गर्ग सों, समझ्यो स्याम स्वरूप।
प्रेमाकुल हरि के विरह, रहन लगी तद्रूप ॥

(२)

चन्दन दैकै नृपहि, आप एकान्त पाय कर।
रोती ही वह, नन्द-नँदन को हृदय ध्यान धर॥
भगत-बछल प्रभु जानि, हृदय में अति अनन्द भर।
कलपति ही मन कबहुँ, आपकों समझि अधमतर॥
यों मुकुन्द की याद में, वह निसि दिन जलपावती।
गाती गीत गोविन्द के, छाती-महल, बनावती॥

(३)

चंदा रात लख्यो तब बोली।
मन-मोहन से मोहक हो तुम, नचत अकास रिझत लख भोली॥
तनिक इन्द्रजालिक यह माया, हमें जँचत पै निसिपति पोली।
टिम-टिम तारे नभ चमकावत, निपट गँवार बनत हमजोली॥
रे कपटी ! तैंने प्रकास की, थोती अपनी थैली खोली।
बिन ब्रजचंद चमक दिखराबत, चार दिना सो चलहि ठठोली॥
यों उपहास कराबत अपनों, मान कही कहुँ है जा डोली।
समता करत सच्चिदानँद सों, जड़ भर निज दिनपति सों झोली॥

(४)

का मोहन मथुरा आवौगे।
पीताम्बर की फहरनि, लहरनि, साँचे हू इत लहरावौगे ॥
मोर-मुकुट गुंजन की माला, ब्रजबाला चौ बिसरावौगे ॥
माखन मिसरी की मिठास कहँ, यहाँ सोमरस में पावौगे ।
अहो राधिका-रमन ! रास-रस सुरस यहाँ कब बरसावौगे ॥
कहा बिना गोपी-गौ-ग्वालन, या मथुरा में बसि पावौगे ?
वह उन्मुक्त मुखर क्रीड़ा-सुख, बिन पाये, हरि ! अकुलावौगे ॥
कहै 'राम' रोवति कुबरी, तुम हमें जनम-भर तरसावौगे ॥

(५)

जो हरि मधुपुर आये हूँ तौ, का हम चरन परसि पामिगे ?
वे जगती के ईस नहीं, हम से खीसन सों बतरामिगे ॥
समझि हमें चेरी कंसा की, काहे कृपा-कोर लामिगे ।
पर घट-घट की जानत हैं हरि, स्यात् न हमें बिसरि पामिगे ॥
चाटुकार पै यहाँ पचासन, उन्हें अबसि ये भड़कामिगे ।
का ब्रजराज कुँवर वर सुन्दर, ये कुरूप लखि बिदरामिगे ।
पर, जो आय गये हरि मथुरा, दरसन तौ ह्वै ही जामिगे ।
हम हैं पतित, पतित-पावन हरि, या ही नाते अपनामिगे ॥

(६)

बेगि पधारौ मदन गुपाल ।
मोर-मुकुट मकराकृत-कुँडल, कब लखिहौं वह रूप रसाल ॥
वह सुन्दर अलकन की लटकनि, जे पी दूध भईं बिकराल ।
गो-रोचन कौ तिलक भाल पै, लकुटि कमरिया करन बिसाल ॥
जे विषधर काली के मस्तक, नाँचे तांडव दै-दै ताल ।
उन चरनन की या चेरी पै, किरपा करौ नन्द के लाल ॥

(७)

काहे कौ सुख वृन्दावन में।
गौ-चारन करते डोलौ हौ, गड़त गोखरू नाथ चरन मे
छाछ-महेरी, माखन-रोटी, ग्वालन के सँग होगे खाते
जो प्रभु होते यहाँ, नित्य षट्रस व्यंजन कौ भोग लगाते
वहाँ मुरलिया आप बजावत, सुनत नाँच घर-घर नाचौ हौ
कछु चोरी, कछु सीना-जोरी, गोपिन सों माखन जाँचौ हौ
जो आओ हरि यहाँ, गुनीजन नाँचि-गाय कैं तुम्हें रिझै हैं
बिन माँगे ही यहँ मनमोहन, भर-भर थार सौंज सब ऐहै
धौ. टेंटी गुंजन के बन में, व्यर्थ समय मत नाथ गँवाओ
सहित 'राम' के अहो स्याम-घन ! जैसें बनै मधुपुरी छाओ

(८)

वे सब लोग महा कपटी हैं, डारे रहत झमेलौ।
किसलय-तन तव कुँबर कन्हाई, निभि है ये न सहेलौ॥
श्रीदामा ने कदुक कारन, दह में तुम्हें कुदायौ।
सोय गये सब मस्त, आप पै दावा पान करायौ॥
नरम उँगरियन पै इनने हरि, गिरवर दियौ धराई।
नन्द-बबा ने गायन के मिस, बन-बन खाक छनाई॥
इतते उत बलराम सहित, धावत कर कामर धारे।
तनिक दही के काज जसोदा, बाँधि ओखरी मारे॥
'राम' कहै ब्रज-बाम भिड़ावा, तुमकौं चोर बतायौ।
आओ मथुरा-नाथ ! न निभि है, बहुत कुसंग निभायौ॥

(९)

कालिन्दी के कछुआ कारे, बालापन के मीत हमारे।
निराधार, निरलब हूते जब, हम तेरे ही जिये सहारे॥

फिर हम तुम कुब्जा दोनों ही, जग-सागर में वे पतवारे।
रूप सील गुन तीनों में ही, बन्धु अहें समकच्छ तुम्हारे॥
या सों पूछत हौं जड़ता-बस, हे अथाह कौ थाहन हारे।
का हमकों साँचे ही मिलि हैं, मोहन-प्यारे, मदन-मुरारे॥
हम हू कारे, तुम हू कारे, सुनियत कारे नन्ददुलारे।
हौ जानौं चाहति बस इतनों, का प्यारे कारेन कौं कारे॥
तुम स्वामिनी भानुजा के जल, मगन बिहार करत हौ प्यारे।
पै स्वामी अजहूँ न पधारे, भनै 'राम' हम हैं मन मारे॥

(१०)

मौन चिरैया सुघर सयानी।
तू चुप बैठी कहा सुनति है, मेरी करुन अटपटी बानी॥
कहि मत दीजो कंस राज सों, सखि यह मेरी राम कहानी।
बिना निहारे हरि-हलधर न तु, अवसि जीव की ह्वै है हानी॥
जनम-जनम तोकों कोसूँगी, का न करत जग आरत प्रानी।
सखि जो उड़त जाय बृन्दाबन, मिलैं कहूँ तोय वे दधि-दानी॥
ढोक दूर ते चरन कमल की, करि कहियो इतनी गुन-खानी।
त्यारी दीनबन्धुता मोहन, मथुरा नहि बेमोल बिकानी॥

(११)

यों अटपटे बिचार लगे ताकों नित घेरन।
बसन लगे मन माहिं नवल नटबर मन-मोहन॥
पै वाकौ यह भाव, जानि पाये नहिं जग जन।
समझन लागे लगी नारि धन के मद उफनन॥

(१२)

ताके दिन, या भाँति प्रेम में बीतन लागे।
नन्द-नन्दन प्रति द्यौस[1] हृदय कौं जीतन लागे॥
माध्यम कंसहि मानि कूबरी हरि मिलबे कौ।
छोड़ि न पाई क्रम अपनौं चदन घिसिबे कौ॥

(१३)

इक दिन चन्दन अरपि गई जब राज-सभा सौं।
तब कुबरी कूँ सुखद सुनाई दियौ सँदेसौ॥
अक्रूरहि नृप भेजि रहे बेगिहि वृन्दावन।
लैबे कौं घनस्याम-राम, जन-जन मन-भावन॥

(१४)

नृप मथुरा में धनुष-यज्ञ रचवावन कारन।
दूर-दूर के न्यौति रहे हैं सुभट सुहावन॥
जो तोरैगौ धनुष, करैगौ पदवी धारन।
लहि है नृप सौं हीरक-हारन, औ वर-बारन॥

(१५)

मन ही मन, सुनि बात, बहुत हरसाई कुबरी।
लटक चाल सौं लौटि गई सो, दुबरी, उभरी॥
अब आमिगे अवसि, कृपा करि कुँवर कन्हाई।
सोच-सोच वह सुक्ख न फूली अंग समाई॥

---

१ दिवस

(१६)

नींद रात में एक निमिष नहिं आई ताकों।
सब लँग दीखन लगे सुघर जदुराई याकों॥
पै बिचार जब कियौ, कंस कौ ध्यान जु आयौ।
कर नृसंसता याद, माथ धुन नीर वहायौ॥

(१७)

उत लोने सुकुमार सलोने हैं नँदलाला।
यहाँ कंस के सूर काल सों कठिन कराला॥
जो ये करि षड़यन्त्र स्याम पै चढ़ धामिगे।
तौ इकले गोविन्द भला का कर पामिगे॥

(१८)

है यातै तौ यही उचित वे यहाँ न आवें।
हम चाहें दुख लहें, किन्तु वे तौ बचि-जावें।
उन्हें देखि कै नन्द-जसोदा ही सुख पावें।
गोपी-बल्लभ भलें, उतै ही रास रचावें॥

(१९)

कुबरी के मन यहै सोचि अति भई निरासा।
स्याम दरस की जात रही मन में ते आसा॥
सोचन लागी नन्द बबा, मूरख नहिं इतने।
भेजिगे जो हृदय दुलारे इकले अपने॥

(२०)

लौटि आज अक्रूर इकेले ही आमिगे।
हम न स्याम के दरस अबहि जल्दी पामिगे॥
ताकी अँखियाँ सोचि-सोचि इमि, भीजन लागीं।
नैंन-नीर सों नारि चन्दनहि पीसन लागी॥

(२१)

मन ह्वै गयौ हिरास, लिये लकुट चन्दन करन।
चली कंस के पास, लोचन जल, डगमग चरन॥

मनमोहन मिलन

(१)

मन नन्द के नन्दन चंदन हाथ, लिये कुबरी घर सों निकसी।
जनु टूटी मृनाल की डार कोई, बहती, उखरी जर सों निकसी॥
किधौ फूटी मनोरथ माल की ही, वह एक लरी, लर सों निकसी।
पर काटी भई वो कपोतनी सी, 'कवि राम' कटे पर सों निकसी॥

(२)

कूबर कौ भारी भार पीठ पै सम्हारे चली,
कमर झुकी कौ भार लाठी पै सम्हारती।
गर्दन उठाय ऊँचौ ऊँट सी, बिखेरे बार,
लट लटकाये, कालिका सी दरसावती॥
डग डगमग, तन तिरछौ, तिरछी चाल,
रुक हाँपती ही, फिरि पगन बढ़ावती।
धरती पै सम्हर-सम्हर धरती ही पैर,
एक डग में ही, तीन-तीन बल खावती॥

(३)

डग के धरत भार पीठ कौ हिलत, कैधों-
कूबरी कुरूपिनी कौ साहस हिलत है।
लठिया हिलत भौंह हिलत तिरछी ह्वै कैं,
मनहुँ बिवेक, छम्रछाया अनुरत है॥
चलत चरन के हिलत ग्रीव हू ह्वै संग,
मानों तन सागर सों ज्वार उमगत है।
'राम कवि' कूबर भयौ है मंदराचल जो,
कुबजा की यौवन उमंगन मथत है॥

(४)

आई दुबरी सी, चकबकी मथुरा कौं देख,
उजरी उजागरी सजी जो नव-नारी सी।
हाट बाट, फाटक नवीन से दिखान लगे,
अगर-बगर लगी दिपन दिवारी सी॥
बनिक, बजाज, स्वर्नकार, अस्त्र-सस्त्र, साजे,
सैनिक निहारे, हे चहूँधा भीर भारी सी।
तोरन पताका, कहूँ गंध की सलाका जरें,
मोतिन के चौकन पै चोप ही सुधारी सी॥

(५)

मथुरा में मणि को बनाव औ जड़ाब देखि,
अपनों कुरूप सोच और भई दुबरी।
पूछन लगी यों अचरज सों बजार बीच,
"आज है कहा जो ये अजीव रचना करी॥"
बोले तब लोग– "परदेसिन सी पूछै, बात,
जगत बिदित पै, खबर तोय ना परी।
आज मथुरेस नें रचौ है धनु-यज्ञ अरी,
तू हू सजि, उचक, मचक चल कुबरी॥"

(६)

सुन यह बात कछू मुख मुसकान लाय,
मन दुखियाय, वह आगै कों चल पड़ी।
नेक और बढ़ी जहाँ कदली के खंभन पै,
पुष्पन की झालरें अनौखी दीठ में अड़ी॥
सुन कै कुलाहल सुदूर पै सकई, फेरि-
भीड़ को प्रबल बेग जान कै भई खड़ी।
पूछन लगी यों बात, लोगन बुलाय पास,
"भैया ! बताओ तौ कहा है वहाँ हड़बड़ी॥"

(७)

कोऊ हँस बोलौ "वह नृप के बुलाये आये,
देखन नगर कूँ गँवारन के बाल हैं।"
कोऊ कहै जाने ये नगर के नियम नहीं,
गोकुल के गाँव के लबार जुड़े ग्वाल हैं॥"
कोऊ कहै धीरै "अरी बात ये नहीं है, मति-
पड़ियो अगाड़ी वे कंस के हू काल हैं।"
कोऊ कहै "भक्त-प्रतिपाल मथुरा के भाग,
राम के समेत आज आये नंदलाल हैं॥"

(८)

सुनि नंदलाल की अबाई सो निहाल भई,
मचकि मचकि डग उमग धरै लगी।
कूबर के भार कौ बिचार त्याग, वेगवती,
एक दचका में चार लचका भरै लगी॥
आगे चल आई ग्वाल-मंडली लखाई परी,
नैनन के अर्घ अगबानी सी करै लगी।
मोर पक्ष वारे कौं प्रतच्छ दूर ही तें देखि,
लक्ष-लक्ष बार, माथ भूमि पै धरै लगी॥

(९)

देखे कूबरी ने दूर ही ते टोल ग्वालन के,
अंगन दुकूल रंग रंग के सुभावते।
गल गुंजमाल, सिर मोर के पखान सजे,
गौ-रज के भाल गाल चंदन सुहावते॥
बीच बलराम हल-भूषल सजाये चलें,
सजन सखान सबै मथुरा दिखावते।
उनके समीप मनमथ के मथैया लखे,
मधुर मधुर मृदु मुरली बजावते॥

(१०)

सीस सिरपेच सोहै मोर के पखान सजौ,
लोचन बिसाल स्याम नीरद बरन हैं।
बक्ष मनि-मालन के ऊपर हैं गुंजमाल,
मधुर हँसनि, बिजुरी सी चमकन हैं ॥
'राम कवि' कटि किंकनी पै कटुका है पील,
कर हैं कड़ूला गजरे की गमकन हैं।
पाँयन में नूपुर मधुर झनकार करें,
आगें घनस्याम, पाछें रोहिनी-ललन हैं॥

(११)

कोई हँसि गावै कोई रसिया सुनावै, कोई,
ठुमका लगावै, कोई नाँच के रिझावै है।
कोई लट्ठ धारें, कोई लकुट, छड़ी है लिये,
कोई मल्ल काछ, काछ सुदृढ़ सुहावै है ।।
कोई बतरावै, कोई भौंह मटकावै और,
कूदत है कोई, कोई काहू कूँ कुदावै है।
'राम कवि' मोद में प्रमोदी टोल ग्वालन कौ,
कूबरी की ओर बढ़तौ ही चलौ आवै है ॥

(१२)

कूबरी निहारी तौ बिनोदी ग्वाल बाल हँसे,
'मथुरा के दिन में प्रतच्छ यह रात है।'
कोऊ कहै 'यह विधिना ने तौ रची है नाँय,
कारीगर कंस की सुरीली करामात है ।।'
कोऊ कहै 'हँसी ये उचित हैं तुम्हारी नाँय,
रूप औ कुरूप निज हाथ की न बात है।'
कोऊ कहै "नृप ने बुलाये हमें गोकुल सों,
ब्याहन सुना ये कूबरी की ही बरात है ।।"

(१३)

बोल्यो सिरीदामा तबै स्याम के निकट जाय,
"देखले कन्हैया यह जीवन की संगिनी
कारे संग कारी की यों जोट बड़ी नीकी मिली,
काली के नथैया देख कारी ये भुजंगिनी
ऐसी रूप वारी व्रजभूमि में न ऐकौ मिलै,
कहि बलराम सों कराऊँ आज मंगिनी
मुरली के भार सों त्रिभंगी तू भयौ है लला,
कूबर के भार बाल ये हू है त्रिभंगिनी ॥

(१४)

सुन बैन स्याम के निहारी जो कुभ्रगिनी तौ,
मुख मुसकाय नेंक नेंनन नँचायगे
कूवरी की प्रीति पहिचानि कै छबीले छैल,
आगे आय ताके, मंद-मंद मुसिकायगे
देख नदलाल कौं कृपालु सो निहाल भई,
बोलन न पाई, नैंन रुँधि कै मुँदायगे
अपने ही आप हाथ, माथे नंद-नन्दन के,
कंस के निकंदन पै चंदन चढ़ायगे।

(१५)

प्रीति कू निहार, डग एक धरि आगे स्याम,
पाँयन के पंजे पर पंजौ एक धरि लियौ
एक कर कंज धर कटि पै, कृपा पसार,
दूसरे सों कूबरी कौ चिबुक पकरि लियौ
'राम कवि' ग्रीव कर ऊँची जो निहारी नेंक,
नैंनन में नैंन डारि मनहिं जकरि लियौ
चट-चट चटक चटाक चटका सौ भयौ,
झटका में खटका सों सूधौ कूब करि दियौ

(१६)

भेदि कै घटान कौं जुन्हाई बिकसी है कैधों,
चन्द्रमा निहारि कै कुमोदिनी खिलाई है।
कूब मंदराचल मथत अगटी कै रमा,
मोहन मदन जाति रति कै भुलाई है ॥
'राम कवि' ललित लुनाई सरसाई, मानों,-
छबि ही सदेह आई स्याम पै लुभाई है।
कैधों राधिका ही मन भावन के संग आज,
कुबजा के अंग में, बसन्त बनि छाई है ॥

(१७)

पारस परस होत लोह ज्यों सुवर्न खरौ,
स्याम कौ परस कूबरी ने सोई गति लई।
रग-रग अंग के विकास मुसकान लागौ,
आँखन प्रकास की अनोखी ओप जग गई ॥
अपने कू आप ही निहारि चकराय बोली,
अरी हाय मैया, दैया कैसी यह कहा भई।
झूँठ है कि साँच है ये, स्वप्न है प्रतच्छ कैधों-
जन्म मम नयौ है, कै पुरानी सों भई नई ॥

(१८)

"भक्त उर चंदना, कुरोग सोक खंडना, जै,
जसुदा अनन्दना जयति ब्रज-चंदना।
अधम उधारन अधम आज तार दई,
मदन मुरारी जय माधव मुकुन्दना ॥
'राम कवि' हम तौ गँवार हैं सदां के रहे,
जानें नहीं भाव-रस-रीति नीति छंदना।
गनेस, सेस, सारदादि संभुना, सनन्दना,
त्यारी! नँदनन्दना न पावें करि बंदना ॥

(१६)

भोरी के भोरे भक्ति-भाव पैर कृपा पसार,
कीनी कृपा कोर कर गहि कें उठाई है !
धूर चरनन की उठाय यों समोद स्याम,
उर सों लगाय, उर तपन बुझाई है ॥
बोले मनभावन "सुहाबनी सलौनी सुनों,
तेरे प्रेम बंध बँधौ आज सों कन्हाई है।
जाओ अब गेह, राखौ सुमुखि सनेह देह,
मग में उचित नहीं अधिक मिताई है।"

(२०)

बोली वह" आपसों मिताई, औ सगाई, जेहि-
मग सों जहाँ हू होय धन्य सो कन्हाई है !
कैसें छोड़ जाऊँ, तुम्हें पाय हू अभागी बनूँ,
यह निधि नाथ बड़े भागन सों पाई है॥
छोड़ अब जैहों यों ही, ऐ हो ब्रजराज प्यारे !
मेरी ये नहीं है नाथ, त्यारी ही हँसाई है।
'राम कवि' नैया मझधार सों निकारि, भागौ-
छोड़ पतवार यामें काहे की बड़ाई है ॥

(२१)

नहि जोड़िये प्रीति कबौ लघु सों, जुड़ि जाय तौ फेरि बिसारिये ना।
जिनकों गहि बाँह उबार लियौ, उनसों फिर बाँह छुड़ाइये ना ॥
'कवि राम' बिचार कै कीजिये, काम में फेरि विराम विचारिये ना।
जग लीक कू छाँड़ि चलौ न कबौं जो चलौ फिर चित्त डुलाइये ना।

(२२)

यासों नदनंद आज भवन हमारे चलौ,
पलकन पाँवड़े चरन में बिछाऊँगी।
होयगी तिहारी रुचि सोई मैं बनाऊँ नाथ,
कुटिया में आज तुम्हें भोजन कराऊँगी॥
अबलौं जो चंदन चढ़ौ हो कंस सीस जो, सो-
आज जग-बंदन के चरन चढ़ाऊँगी।
हृदय पटुलिया पै प्रेम रज्जु डार, तापै,
आपकों बिठाय प्रेम-झूलना झुलाऊँगी॥"

(२३)

"एहो प्रान-बल्लभा! तिहारे प्रेम-सागर की,
थाह है अथाह सो न मेरे हाथ आवै है।
पर हे प्रबीना! फलै वृक्ष है सदा ही नहीं,
रितु अनुसार सो मधुर फल पावै है॥
कंस के बुलाये हम आये हैं तिहारी पुरी,
जानों हमें उनपै अबार भई जावै है।
आऊँगो अवस्य तेरे गेह मैं, प्रमान मान,
रहि-रहि याद मोय प्रेमी की सतावै है॥

(२४)

यों समुझाय के सुलोचनी कौं स्याम चले,
सखा-वृन्द संग, इतै चली नव-नागरी।
घनस्याम ओर चातकी सी दीठि गाढ़-गाढ़,
चरन पियूष सों भरत रस-नागरी॥
रुनक झुनक पग नूपुरन घोर रोर,
रूप की उजागरी, प्रभा-भरी, सुखागरी।
कूबरी कुरूपिनी यों सुन्दर स्वरूप लह्यौ,
भाग्य के विधाता नें फेर दियौ भाग री॥

(२५)

गेह आय सो रूप बिंब निज लागी जोहन।
वह अपने पै अपने मन में लागी मोहन ।।
मनभावन के आवन को मग लागी हेरन।
रोम-रोम रम गये स्याम, कुबरी कौं चैन न ।।

(२६)

मार कृष्न ने कंस, उग्रसैन राजा किये।
तब जदुकुल अवतंस, चले कूबरी के भवन ।।

(२७)

स्याम दरस की लालसा, प्रतिदिन पथ जोहन लगी।
मोती निज अँखियान के, लै माला पोवन लगी ।।

सम्मिलन

(१)

सासन-तन्त्र सुधारि करि उग्रसेन नरपाल।
सूरसेन गणतन्त्र किय, कर दई प्रजा निहाल ॥
कर दई प्रजा निहाल, स्याम नृप-तन्त्र मिटायौ।
अंधक वृष्णि मिले, जदुकुल कौ संघ बनायौ ॥
मेट अधर्म सत्य की धुरि, थाप्यौ अनुसासन।
भई प्रजा अति सुखी, स्याम सुन्दर के सासन ॥

(२)

वासुदेव मार कंस, नास कै नृसंस तंत्र,
राजनीति रीति सों चलाये सबै राजकाज।
जन-हितकारिता समानता के सीलता के,
धर्म के अधार पै सुथापै, सबै साज-बाज ॥
क्रूरता, कठोरता, निठुरता नसाय दई,
पान लग्यौ सान्ति, सुख सूरसैन कौ समाज।
पाय अवकास भक्त बस मथुराधिराज,
कूबरी के गेह में पधारे यदुराज आज ॥

(३)

लखि कै हरि कौं हरसाय उठी, मुसकान के फूल दिये बरसाई।
नैन की धार सों अर्घ्य दियौ, उर पाँमड़े पै पर्यंक लौं लाई ॥
गिरधारन पै मन-मानिक बार दियौ, निज प्रानन भेंट चढ़ाई।
कही लाभ दियौ जग-जीवन कौ, प्रभु धन्य, निभाई सनेह सगाई ॥

(४)

कहाँ तुम राजन के अधिराज, कहाँ मैं कुनारी बिचारी समाज की।
कहाँ जदुबंस विभूषन आप, मैं चेरी कहाँ नृप कंस के राज की॥
अहो ! जगती के सिरोमनि नाथ! कहाँ मैं अनाथ, न काहू के काज की।
परी पग-धूरि लगाई हिये, प्रभु ! रीति निभाई गरीब निवाज की॥

(५)

मनभावनी ! बीती सो बात गई,
तजि कालि की बात, करौ अब आज की।
कछु ऊँच औ नीच की, जाति कुजाति की,
मानत मैं न, अनीति समाज की॥
जन्में सब एक समान यहाँ,
औ मरें हूँ समान, ये बात न राज की।
जग ऊँच कहाय जो नीच हैं कर्म तौ,
'राम' भनें वह जाति अकाज की॥

(६)

नित कर्म करें जग में जो भले, उनकों कबहू नहिं मैं बिसरौं हौं।
जन मेरे सहारे रहें जग जे, तिनकौ है सहारौ, भजौ मैं फिरौं हौं॥
'कवि राम' हौं भक्त के भाव बँध्यौ,जब जैसो धराबै है रूप धरौं हौं।
नर मोकों भजै,तेहि कौं मैं भजौं, जो भजै हमसों तेहि सों मैं भजौं हौं।

(७)

उपकार न जामें हमारौ कछू, निज कर्म ही कौ फल तैनें लह्यौ है।
तब पूरब-जन्म की साध कों साधिबे, मेरौ यहाँ यह फेरौ भयौ है॥
हम रूप के हैं न भिखारी भटू, घनस्याम तौ प्रीति कौ चेरौ रह्यौ है।
ब्रज की सुखधाम बिसारि कें बाम, यहाँ हम आय बसेरौ कर्‌यौ है॥

(८)

कछु द्यौस यहाँ मथुरा बसि कै तुमसों मिलि कें रस-सिन्धु अन्हाय है
जब बीति गये ब्रज के रस वे. रस ये हू सखी ! सदाँ नाँय टिकाय है।
हम कर्म की डोर बँधे, सुभगे ! कबौ देखन कों मुख ये ललचाय है
इहाँ राति, दिना सदा आय हैं जाय हैं, जो हम जाय हैं फेरि न आय है।

(९)

कछु लीला रचान चहौ हौ नई, ये जँचै हमकों प्रभु लौटि कै जाँयगे
अहै चारि दिना मुख चाँदनी के, हम फेर अँधेरे में ही घिरि जाँयगे।
ब्रज की गुपियान समान नहीं, हम हाटन बाटन सोर मँचायगे
तन सों प्रभु जाँय भलें ही चले, मन सों छन एक कों जान न पायँगे।

(१०)

हम तौ सब भाँति तुम्हारे भये, हमकों तौ तुम्हें ही निभावनो है
जब जैसे जहाँ रखिहौ रहि हैं, तरसाय हौ तौ कलपावनों है।
'कवि राम' जे साँमरे रँग रँगे, उनपै रंग और न छावनो है
अपनाइये जो अपनावनों है, ठुकराइये जो ठुकरावनों है।

(११)

पड़ी चरन यों कूबरी, नैन नेह उमगाय।
गहि बिसाल भुज-बंध हरि, लीनी कंठ लगाय॥
लीनी कंठ लगाय, हृदय की तपन बुझाई।
यों कुबरी ने महारानी की पदवी पाई॥
धन्य भई जदुनन्द-कण्ठ कंठा की सु-लड़ी।
बासुदेव सिर चढ़ी, कंस के पाँयन जु पड़ी॥

(१२)

कुटिया कुबरी की भई, मोहन कौ रनिवास।
दासी के महलन भये, बीसन दासी दास॥
बीसन दासी दास, खडे रुख लागे जोहन।
जग मोहन हरि लगे कूबरी पै जब मोहन॥

कहै 'राम' यह काल बली ऐसौ खटपटिया ।
करै कुटी कौ महल और महलन की कुटिया ॥

(१३)

कुबरी कौ रंग रूप अब, बिकसत नित्य नवीन ।
स्याम कमल सौ मुख भयौ, भये पयोधर पीन ॥
भये पयोधर पीन, मत्त नैना रतनारे ।
पुतरिन में बसि गये, मनोहर मोहन प्यारे ॥
कहै 'राम' अँग-अँग ओप अति अनुपम उभरी ।
परम सुन्दरी भई, कंस की चेरी कुबरी ॥

(१४)

ब्रजबासिनि ब्रज में सुन्यौ, कुबरी कौ यह हाल ।
कपट मोहिनी डार तेहि, मोहे मोहन लाल ॥
मोहे मोहन लाल, लौटि नहि आय रहे हैं ।
चेरी चाकर भले ब्रजराज कहाय रहे हैं ॥
कहै 'राम' सुनि भनति,कूबरी भरति उसासिन ।
"दोस देति क्यों हमें गँवारिन ये ब्रज-बासिन ॥

(१५)

समाचार तब ही मिलौ, उद्धव ब्रज कौं जात ।
ब्रजबासिन के बोध हित, भेजि रहे ब्रज-तात ॥

छटवाँ सर्ग

कुब्जा-सन्देश

(१)

ऊधौ कौ ब्रज गवन सुनत बोली तेहि चेरी।
"वे कहुँ चले न जाँय, लाउ री उनकौं टेरी॥
उद्धव जो कहुँ बिना मिले, जैहैं ब्रज कौं री।
बिगरि जायगौ काज, न कछु चलि है फिर मेरी॥

(२)

कुबरी कौ सन्देस-सुनत, उद्धव मुसिकाये।
भये स्याम सों बिदा, चेरि के संग घर आये॥
कहि 'महारानी' याहि, तुरत उद्धव सिर नाये।
दै सिंहासन मुदित चित्त आसन बैठाये॥

(३)

मन में मोद मनाय, सखा जानि यदुनाथ के।
मंद मंद मुस्काय, उद्धव सौं कहिवे लगी।

(४)

"ऊधौ! तुम ब्रज जात, सुनी भेजत बनवारी।
गोबरहारी बसें जहाँ है, ग्वारि गँवारी॥
सुनत गारियाँ देत हैं, हमकों वे पनिहारि।
मेरी चरचा करत हैं, गाम गाम घर द्वार॥
बुरी यह बात है॥

(५)

उन गँवारि के गाँव वृथा क्यों जान चहौ हौ ।
का भैंसन कों ध्रुपद सुनाय रिझान चहौ हौ ।।
पढ़ी न अच्छर एक जे, समझिगी का राख ।
सो कहु देखै कौन बिधि, बिधि न दई जेहि आँख ।।
स्याम सोचत न चौ ।।

(६)

भेजि तुम्हें चौ व्यर्थ रहे हैं, हँसी हँसाई ।
उन सौतनि कौं ओर मूँड़ है रहे चढ़ाई ।।
बीत गई जो बात है, ताहि तूल फिर दैन ।
त्यारौ यों जानौ वहां, ऊधौ हमें जचै न ।।
बिचारौ आप ही ।।

(७)

जो क्योंहू यह बात उन्हें समझाय न पाओ ।
उनको हठ जो यही, "कि तुम जाओ ही जाओ ।।
तौ फिर कहियों जाय तुम, सूधी सी यह बात ।
मारत टक्कर भीत में, ते तोड़त निज गात ।।
समझि ये लीजिये ।।

(८)

अब न स्याम बलराम लौटि ब्रज आय सकिंगे ।
तुम गँवारिनिन में न, कदापि खटाय सकिंगे ।।
रौनों-धौनों छोड़ि अब, देखौ अपनों काम ।
तुम्हें यहाँ आराम है, उन्हें वहाँ आराम ।।
कही यह स्याम ने ।।

(९)

वहाँ उचित नहिं जाय, स्याम की व्यथा सुनानों ।
मोहन कौ संदेस, न मूढ़न बीच बतानों ।।
ऐसौ मति कहुँ कीजियों, स्याम लौटि ब्रज जाँय ।
मथुरा पै दुख की घटा, फिर घुमड़ें गहराँय ।।
होय सब पटपरा ।।

(१०)

है मेरी, कर जोरि बीनती इतनी तुमसों ।
मेरौ हू संदेस आप कहियों गोपिन सों ।।
पानी पी पी कै हमें, चौं कोसति ब्रजनारि ।
हमने उनकौ कौन सौ, माल लियौ है मारि ।।
दोष जो देति हैं ।।

(११)

मन मोहन मग जात स्वयं आये मम आगे ।
बढ़ि उनके ही हाथ हमारे तन सों लागे ।।
मैं टेढ़ी सूधी करी, तौ वे चौं चिचियात ।
हरि जब चल घर आत हैं, धक्का दियौ न जात ।।
बुलावत हम नहीं ।।

(१२)

कहियौ त्यारे घरहु आवत हे गिरिधारी ।
उनकी तबही क्यों न आपने बान सुधारी !
पहलें टेब बिगारि अब, हमकों दोष लगात ।
चले, पुरानी लीक पै स्याम आज लौं जात ।।
नयौ कछु है नहीं ।।

(१३)

अब आवतु क्यों व्यर्थ तुम्हें रहि-रहि पछितायो।
तब संगति कौ फलहि, अहो ऐसौ रँग लायौ॥
जब छोटे गोपाल हे, मैया कों भड़काय।
तुम कुसंगिनिन ने दिये ऊखल सों बँधवाय॥
मिलौ सौ फल तुम्हें॥

(१४)

तनक दही के काज, नचातीं उन्हें घरन में।
छिन में माखन देन कहत, नटि जातीं छिन में॥
तुमने ही घनस्याम कों, कियौ चोर बरजोर।
फिर का मेरौ दोष जो, चित्त लियौ उन चोर॥
ठगौरी लाय कै॥

(१५)

ठग-विद्या की गुरू! सिखाये सब झमेला।
गुरू रहि-गये गुरू, ह्वै गये सक्कर चेला॥
अब तुम चौं पछिताति हौ, उनपै कछु बस नाहिं।
सबलन सों अटकत नहीं, मेरी छीलत छाहिं॥
निबल बोदी समझि॥

(१६)

पर, हम इतने पोच न मर जायें जो यों डर।
वे गुड़ हैं हम नहीं, जो चट् जल में जायें घुर।
तुम अपने घर हौ खुसी हम अपने घर माहिं।
लै जाओ जो जायँ हरि, हमकों 'नाहीं' नाहिं॥
कोसिये मति हमें॥

(१७)

पै लीजै यह समझ, न जैहैं लौटि स्याम अब।
सूरसैन-अधिराज चरैहैं नहीं गाय अब॥
कारौ कम्बर कर लकुट, बन-बन बेनु बजात।
राज-काज तजि छाछ पै, अब नहिं नाचन जात॥
करौ संतोस तुम॥

(१८)

साँझ-सकारे धेनु, रहीं इनसों धिरबाबति।
दिन-भर इनपै रहीं बिपिन बछरा चरबाबति॥
सोबत हीं सन्नाय तुम, हाथ पाँम फटकारि।
माखन की चौंटी तबै, बीनत हुते मुरारि॥
दही के लोभ सों॥

(१९)

याकौ बदलौ अहह! आपने भलौ चुकायौ।
'चोर-चोर' चिल्लाय नाम बदनाम करायौ॥
या ही सों नँदलाल के, पीरे भये न हाथ।
गुपचुप, यों उनसों कियौ तुम स्वारथ कौ साथ॥
बड़ी तुम घरबसी॥

(२०)

अरी निठल्ली बहुत चले हौ त्यारी लल्लो।
पनघट, हाटरु बाट, जमुन-तट पै खिसगिल्लो॥
तुम्हें एक ही काम हौ, स्याम होंय बदनाम।
यासों इन्हें सुलच्छनी, मिलै न सुन्दर बाम॥
पुजति तुम ही रहौ॥

(२१)

जान गये हैं सो कुचाल सब मोहन त्यारी।
ऊपर गोरी लखौ, किन्तु, भीतर हौ कारी ॥
रूँठ रूँठ कै बैठती हीं करिकें तुम मान।
हाथन में मन लेत हे, तब घनस्याम सुजान ॥
गये दिन बीत सो ॥

(२२)

दूध-दही लै अनत जाति हीं तुम तौ बेचन।
तब माखन कों रहे नित्यप्रति तरसत मोहन।
प्रतिदिन हा हा खात हे, करि करि कैं मनुहार।
दसो ! तुम हँसि देति ही, 'ही-ही' दाँत निकार ॥
याद वे दिन करौ ॥

(२३)

त्यारे ये सब गुननि अहो मैं हौं पहिचानति।
तुम काहू की नाहिं सगी, नीकें हौं जानति ॥
छोड़ि पूत, पति, गेह सब, जमुना तट पै जाय।
सील धर्म मरियाद कों, पानी दियौ लगाय ॥
सरद की राति तुम ॥

(२४)

जैसी बैठी रहीं सबहिं उठि धाईं तैसी।
तरुनाई में अहो, भटू ! मदमाईं ऐसी ॥
तुम पै ऐसी घरि-गईं कामदेव की सान।
लोक-लाज कुल-कानि कौ करि मटिया मैदान ॥
भजी बन-बन फिरीं ॥

(२५)

तुम मदमातिन सकल, लिये बहकाय मुरारी।
महारास करि साधी मन की साध तुम्हारी।।
चौड़े में नाँचन लगीं, तब तुम दै-दै ताल।
इतते कौतुक कर चुकीं, फिरहु बाल, ब्रजबाल।।
बनी जुग जुग रहौ।।

(२६)

अपने ही पति-पूत, तुम्हें नहिं लगे सगे जब।
नंदलाल सों कहौ, तुम्हारौ का नातौ तब।।
ब्रज में सब गोपाल हैं, गौरस के सर्वज्ञ।
तुम हू हौ गोपालिनी, चखनी रस-मर्मज्ञ।।
अनेकन जोट है।।

(२७)

तुमने योगी कृष्ण पुजाये करि कैं भोगी।
अब का इन्हें बुलाय, चहौ करनों चिर-रोगी।।
बद अच्छौ बदनाम सों, सुनि-लीजै ब्रजवाम।
यदुनन्दन घनश्याम है, इन्हें न समझौ काम।।
भये निष्काम ये।।

(२८)

मोसों बिगरो व्यर्थ, न तुमसी मेरी ख्वारी।
मैं तौ क्वारी किन्तु तुमहिं पति-पूतन वारी।।
तन मन सों हमने बरे, केवल कृष्ण-मुरारि।
पर तुम सब ही करि चुकी, अब तक द्वै भरतार।।
करौ अब तीसरौ।।

(२६)

तुम समर्थ हो, तम जो करौ तुम्हें सो सोभै ।
हम पै करि अब कृपा, छोड़िये इनके लोभै ॥
पनघट,जमुना तट बिकट,खेत,क्यार, खलिहान ।
सब में ही बाँटति फिरीं, तुम जोबन कौ दान ॥
सदा दोऊ हाथ सों ॥

(३०)

या सों अब तजि काम, भजौ निष्काम मुरारी ।
खेल खाय तुम चुकी, हमारी है अब बारी ॥
तासों गारी देन को, छोड़ौ अपनी बान ।
हेराफेरी त्याग कें, धरि निर्गुन कौ ध्यान ॥
भजौ अब राम कौं ।

(३१)

ऊधौ! यह सँदेस सबहि गोपिन सों कहियों ।
अनुचित जो कछु कहा होय सो चित्त न लइयों ॥
वे है निपट गँवारिनी, दै गारो बतराहि ।
मीठी बोलो कौ वहाँ टका उठँगौ नाहि ॥
कहे यों कटु बचन ॥

(३२)

तुम पंडित विद्वान नीति मर्मज्ञ गुनीले ।
देखि आपकौ ग्यान, होत हैं ज्ञानी ढीले ॥
थोरे मे लीजै समझि, कहि न सकूँ मै भीत ।
वहाँ अनेकन— एक हू– बुरी होत है सौत ॥
चून हू की बनी ।

(३३)

जामों जैसे बनै बात तुम तात बनैयों।
निगुहा के रीठा सों, स्यामल रंग छुड़ैयों॥
गाऊँगी मै आपकौ, निसि बासर गुनगान।
जो मथुरा में बसि गये, कृपासिंधु भगवान्॥
सखा सुन स्याम के॥

(३४)

गोपिन कूँ समझाय उक्ति युक्तिन सों उद्धव।
इकले, अवसर पाय, जाइयों बरसाने तब॥
कन-कन मे जाके रम्यौ स्याम नाम अभिराम।
जहाँ बसै वृषभानुजा बरसानौ सुख धाम॥
सरस रस सार सो॥

(३५)

ता भूमी के लता गुल्म, गलियां गलियारे।
गहवरवन के कुंज पुंज, गिरधर के प्यारे॥
खोर-साँकरी निरखि कै, धरियों मस्तक रेनु।
दानबिहारी की जहां, बजत हुती मृदु बेनु॥
रम्य लीला-थली॥

(३६)

'मोर-कुटी' जहँ मोर-नृत्य नाचे हे प्यारे।
तापर मस्तक धरे बिना, बढ़ियों न अगारे॥
प्रेम-सरोवर न्हाय कै, प्रेम-मंत्र उर धार।
तब करियों वृषभानु की, सिंहपौर कों पार॥
बसत जँह लाड़िली।

(३७)

भोरी-गोरी नवल किसोरी, हरि चित चोरी।
रास रसेस्वरि, सदा सिरी ब्रजचन्द चकोरी॥
वृन्दाविपिन, बिहारिनी, मोहन मन-रिझवार।
जहाँ राधिका पग धरें, नैना नन्द कुमार॥
प्रेम रस रँग भरी॥

(३८)

ममहुत तिनके चरन जाइ, निज सीस झुकैयों।
परसि पद्म-पग जनम आपनों धन्य बनैयौं॥
हाथ जोरि सिर नाय फिर, पद-पराग उर लाय।
ऊधौ! बिनती कीजियों, सविनय, सदय बनाय॥
होय अनुकूल जब॥

(३९)

मैं मोहन की चेरि, ताहि विधि अहों तुम्हारी।
निपट गँवारी जानि, चूक सब छमों हमारी॥
कृपा-कोर बिन रावरी, मिलत न मोहन-लाल।
पारस-मणि हमकूँ दई, आप बनी कंगाल॥
धन्य यह त्याग है॥

(४०)

कृपा कोर भर पूर आप की मो पर भारी।
पर कूबर सों अधिक करै यह भार दुखारी॥
बोझ सहन ये ह्वै सकै, सो अब करिय उपाय।
अहो दयामयि दीन की, तुम बिन कौन सहाय॥
सहारौ दीजिये॥

(४१)

मैंने होस सम्हारि, स्याम-स्यामा ही गाये।
ताके फल सों नन्दलाल के दरसन पाये॥
स्याम दरस कौ फल फले, दरस तिहारौ होय।
ता दिन की अभिलाष मैं, मन में रही सँजोय॥
कृपा कब होयगी॥

(४२)

एक रूप द्वै देह, स्याम की और तुम्हारी।
अविचल जोरी रहै राधिका-बिपिन-बिहारी॥
आप वहाँ, वे हैं यहाँ, ये वे ही पतियाँय।
श्री चरनन की छाँह जिन, छिन हू सेईं नाँय॥
मूढ़ मतिमंद हैं॥

(४३)

है यह लीला रची आपकी विस्मयकारी।
सो मैं समझी रंच, कृपा की कोर तुम्हारी॥
तुम में इनमें अन्तरौ, एकहु पल कौ नाहिं।
बारि धार से एक हौ, जैसें तन अरु छाँह॥
भक्त मन भावने॥

(४४)

त्यारे संबल बिना, स्याम हैं सदा अधूरे।
कुंज-बिहारी, कुंज-बिहारिनि-बिन कब पूरे॥
मूरख जन कहैं, कान्ह की बनि बैठी मैं बाम।
बिना चाँदनी चंद जिमि, तिम स्यामा बिन स्याम॥
सोचनौ व्यर्थ है॥

(४५)

त्यारी कृपा-कटाक्ष पाय, हैं वे गिरिधारी।
जहाँ राधिका, रास वही हैं रास-बिहारी॥
तुम प्रगट्यौ रस, वे भये रसिकसिरोमनिराय।
तुम ही वह स्वर ताल जेहि नचिबैं जादोराय॥
सदा सब काल में॥

(४६)

दीजै मोकों चरन-छाँह, हे कीर्ति-कुमारी।
श्रीदामा की सहोदरा, बरसानेबारी॥
तिरछे ह्वै उर में धँसे, निकसि न सकें मुरारि।
यह बर माँगौं, दीजिये, हे वृषभानु कुमारि।
पुरौ मन-कामना॥

(४७)

यह कहि विह्वल भई, परी धरनी अकुलाई।
राधा माधव प्रेम मई, उद्धव मन भाई॥
फिर विह्वल वह प्रेम में, उठि बैठी तत्काल।
कहन लगी समुझाइ कै, यों आगैं बेहाल॥
सखा सुन स्याम के॥

(४८)

नँदगाँव जब जाउ तहाँ यह भूलि न जइयों।
जसुमति, नँद सों जाय,'पाँय-लागन'मम कहियों॥
करियों विनती गहि चरन, सुनिये ब्रज प्रतिपाल।
निज सुत चेरी जानि कै, मोपै होउ दयाल॥
कही यह कूबरी

(४९)

पुत्र महाराजाधिराज अब भये तुम्हारे।
तुम गायन कौं पाल, करौ फिर क्यों प्रतिपारे॥
रजधानी अब राजिये, छोड़ि सबै जंजाल।
चरन सेय कै आपके, हौं काटों जम-जाल॥
यही मम लालसा॥

(५०)

जो तुम आओ यहाँ, स्याम हू सुख पामिंगे।
धोय धोय तब चरन, हमहुँ भव तरि जामिंगे॥
कहियों जसुदा माय सों, औरन-सी मैं नाँय।
लरिकैं घर में सास सों, जो न्यारी बसि जांय॥
न संका कीजियों॥

(५१)

आप पधारौ, दरस पाय के मैं सुख पाऊँ।
तुम दोउन के चरन सेइ, जग पुन्य कमाऊँ॥
घर के कारोबार सों, तुम रहियों निहचिन्त।
मैं इकली करि लेंऊँगी, आदि मध्य लौं अंत॥
कहौगी आप जो॥

(५२)

तुम बैठी मुख-कमल जोहियों निज लालन कौ।
अहै हमारौ काम, तुम्हारी रुचि राखन कौ॥
मेरे मन यह साध है, धरूँ चरन में माथ।
मैया मस्तक पै धरौ, आप कृपा कौ हाथ॥
पुरौ मन कामना॥

(५३)

इतनौ मम संदेस आप गोकुल लै जाओ।
उद्धव जी ! जग माँहि तनिक यह पुन्य कमाओ।।
मथुरा में अविचल बसें राम सहित घनस्याम।
इतनौ मेरौ स्वार्थ है, बस ये ही है काम।।
कृपा कछु जो करौ।।

(५४)

इमि उद्धव कौ समझाय कै सो, उठी सीस पै पाग नई बँधिवाई।
कलकंठ में कंठा मणी कौ धराय के, छप्पन भोग ज्यौनार कराई।।
'कहि राम'जबै ब्रज जान लगे,ब्रजराज के मीत की कीनी बिदाई।
वह चाहति ही कुछ बोलन पै,रुँधि कण्ठ गयौ,हिचकी भरि लाई।।

(५५)

ब्रज उद्धव जाय जबै पहुँचे,
कुबरी के सदेस सबै ही सुनाये।
सुनि काहू के आगि लगी हिय में,
कोऊ रोय कै आरत बैन सुनाये।।
सहमी सहमी कोऊ बोलि परी,
"पिया सौतनि ने हैं भले भरमाये।"
"कविराम" न दोष है कूबरी कौ,
कपटी घनस्याम ही लौटि न आये।।

(५६)

तहँ छै मास बिताय, ब्रह्म-ज्ञान चरचा करत।
उद्धव जोग भुलाय लौटे स्यामल रँगरँगे।।

(५७)

उद्धव कुवरिहि लौटि सकल संदेस जतायौ।
जैसी जाने कही हाल सो सही बतायौ॥
नँद जू कौ 'आसीस-वचन' तिन ताहि सुनायौ।
कह्यौ गोपिकन "सौति जरे पै लौन लगायौ॥"

(५८)

टेढ़े कौ कबहू न टेढ़पन सकि है जाई।
को कुकरी की पूँछ सकै, सूधी करवाई॥
दिन हैं बाके, कहै चहै जो, है सब थोरौ।
हमें दोस चों देय, देख तू अपनौ म्हौरो॥"

(५९)

उपालम्भ यों गोप-तियन के ताहि सुनाये।
बरसाने के हाल सरस सबही बतराये॥
अब काहू सों मिलति नहीं वृषभानु-दुलारी।
मन-भारी अति दीन दुखारी, सबसों न्यारी॥

(६०)

सुनि न्यारौ संदेस भये नैना अरुनारे।
टपकि पड़े द्वै नैन-बिन्दु, जनु मोती डारे॥
फिरि बोलीं—जो उन्हें पियारौ, हमें पियारौ।
मेरौ उनकौ प्यार नहीं है, न्यारौ न्यारौ॥"

(६१)

इतनौ कहि वृषभानु-नंदिनी अधिक न बोलीं।
जसुमति माता पोट प्रेम की सिगरी खोलीं॥
नख-सिख रूपरु रंग, प्रकृति सब पूछन लागीं।
सुख-दुख बूझन लगीं न्यारौ, उर अनुरागीं॥

(६२)

अँसुअन नीर पखारि हृदय बोलीं फिर मैया।
"सदा रहौ तुम सुखी, रहै अनुकूल कन्हैया॥
जब तक है गिरिराज और जमुना में पानी।
अचल रहै सौभाग्य तुम्हारौ हे सुखदानी॥"

(६३)

उद्धव ने संदेस ताहि यों सबहि सुनायौ।
अब न जायँगे लौटि स्याम यह भेद बतायौ॥
सुनि उद्धव के बैन चैन कुबरी कों आयौ।
पठयौ करि सनमान भवन जो तुरत सिधायौ॥

(६४)

प्रेम लपेटौ अटपटौ, सुनि ब्रज कौ सन्देस।
नैनन में नाँचन लगौ, सरस कटीलौ देस॥

वाँ सर्ग

वियोग-व्यथ

(१)

काल चाँदनी रात ही, आज अँधेरी रात।
बिगड़ि जात सब बात है, करत काल जब घात॥
करत काल जब घात, लात ऐसी तकि मारै।
ऊजड़ देय बसाय, बसे की जड़हि उखारै॥
बाँध्यौ पाटी सों जकरि, दसकंधर महिपाल।
ताहू कौं कवि 'राम' कहि निगलि गयौ यह काल॥

(२)

चली काल ने चाल जब, सिहिर उठौ जदुबंस।
जरासंध के दल चढ़े, करन नगर विध्वंस॥
करन नगर बिध्वंस, दंस ज्यों महस ब्याल के।
फुंकारहि, हुंकारहि रूप, प्रत्यक्ष काल के॥
पुरबासी भाजन लागे, देख बिकट भट अतिबली।
रोके एकहु नहिं रुके, काहू की कछु नहिं चली॥

(३)

मधुपुरि में यदुबंस के, सूर युद्ध के साज।
सज-सज कै सब बढ़ चले, गहरी ज्यों नभ गाज॥
गहरी ज्यों नभ गाज, कटाकट बिकट लड़ाई।
मार मार धर मार, रोर अम्बर में छाई॥
जामाता निज कंस कौ, बध सुनि क्रोधाग्नी जरी।
'भनै राम' तेहि अग्नि की, होन लगी हवि मधुपुरी

(४)

कोट, ओट, परकोट चोट, तरवार चमक्के
बाजि बिकट हिनिनाहि, कहूँ गजराज समक्के।
कहुँ सेली कहुँ सैल, तीर तरवार भिरक्के
कहूँ चंड भुज दण्ड, रुंड कहुँ मुण्ड पटक्के ।।
चट् चट् चटकि धर मार धुनि, धधधँडान नभ में छई
कचन सी मथुरापुरी, श्रोनित में लथपथ भई ।

(५)

घिरे बिरुक, भट प्रबल बल, मन सोचत यदुराज
सब कटि कटि मरि जायँगे, कछु लगि है नहि हाथ ।।
कछु लगि है नहि हाथ, नई है सक्ति हमारी
विकट सुहृद्दल संग, सत्रु सम्मुख है भारी ।
इनसों कर संगर कहूँ, सौरसेनि जो लड़ मरे ।
'राम भने' अबलान के, बरसहि धन, नैनन घिरे ।।

(६)

रोमिगी जदुकुल-बधू, ज्यों रोवत ब्रजबाल ।
आज युद्ध के मिस इतै, खोल खड़ो मुंह काल ।।
खोल खड़ो मुंह काल, ताहि मैं बंद करुंगो
यदु-बालान के नेत्र बिन्दु, लहि हंसन न दुंगो ।।
भजें रात रण छोड़ हम, अब अनतहि मुख धोय हैं
काल फस्यौ निज जाल इत, बीहड़ में बसि रोय हैं ।

(७)

जब जब युद्ध भये जगती पैं, लाखन सूर कटे हैं ।
नर-मुंडन सों, छुद्र स्वार्थ के, खंदक बड़े पटे हैं ।।
अहं भाव कौ पोषन, निरदोषी सीसन सों करि कै ।
कोरी आन बान पै धरती, सिसकत है लरि लरि कै ।।

पै न जुद्ध सों परौ, समस्या कौ कोऊ हल पूरौ।
भर लोहू सों हू लिप्सा कौ. सागर रह्यौ अधूरौ ।।
या सों लरिकैं जुद्ध, नहीं मानवता हमकों हननी।
चाहें जनहित में पड़ि जाये, मथुरा सबकों तजनी ।।

(८)

जरासंध सुनि नृपति कंस कौ वध, रिसियाय रह्यौ है।
जा माता कौ प्रेम याहि, पथ सों भटकाय रह्यौ है ।।
समझत ये नहि कंस गयौ, अपनी करनी सो मारौ।
पै निमित्त मैं भयौ, नाम यासों बदनाम हमारौ ।।
करैं संधि चर्चा या सों तौ, य दूनौ ह्वै जैहै।
निज बल में मदमत्त, निबल कों आगे और सतैहै ।।
या सो उचित चन्द्रबसिन कों, तज नगरी भजि जानों।
टक्कर लेत यहाँ पथरन में, ये भटकै खिसियानों ।।

(९)

रण छोड़न की मन्त्रणा, गुप्त रची यदुराज।
मथुरा नगर अनाथ कर, गये द्वारका भाज ।।
गये द्वारका भाज, स्वर्न कौ नगर बसायौ।
जरासंघ इत मथुरा, बिजन सब भाँति बनायौ ।।
अग्रगण्य मधुपुर हुतौ, रजधानिन सिर मौर।
दंडिति सो खंडित भयौ, भाजे जब रणछोड़ ।।

(१०)

जमुना के तट पैं बसौ, सुन्दर चन्द्राकार।
सो पुर लोटौ धूरि में, खाबत आज पछार ।।
खाबत आज पछार, संग इकलौ कुबरी के।
कौन धराबैं धीर, स्याम बिन बा दुबरी के ।।
'कहै राम' रवि-सुता सरित की सुनी जलपना।
बोली "लैबे हमें तुम्हें, आबैगौ जम ना ।।"

(११)

जम की बहिन कहौ कछु जमुना !
छोड़ि तुम्हें प्यारे नट नागर, तज मथुरा कीनों कित गमना।
राधा सी सुन्दरि बिसार के यहाँ बसे, पर तुम न बिसारी।
मोड़ लियौ अब म्हौं तुम हू सौं, तौ गिनती फिर कौन हमारी॥
छोड़ि गये मथुरा मधुसूदन, तौ अब हम पीछे नहिं भजि है।
उनके पथ में पाथर बनि कै, सिर पड़ कै, मरजाद न तजि है॥
हे कालिन्दी प्रिया स्याम की, त्यारे रंग हैं पीय रँगाने।
का हमसों दुराय नंदनन्दन, है तुमने निज हीय छिपाने॥
विनय करूँ कर जोड़ सखी, कै तौ हमकौं निज मीत मिलाश्रो।
कै अपने भैया सों कहि कै, हमें उनहि के लोक पठाश्रौ॥
तू तौ कल कल क्रुन्दन करती, गगा के गल जाय लगैगी।
'कहै राम' पै मो दुबरी कौं, कौन दुखी लखि अंक भरैगी॥

(१२)

जमुना तट के जमुना बाग, जाग, जाग, जाग,
भाज गये रनछोर पकड़ तू, भाग, भाग, भाग।
साँय साँय कर मति सन्नावै। मति डारिन के हाथ हिलावै॥
पुष्पन के मिस मति मुस्कावै। गयौ समें फिर हाथ न आवै।
निकसे हु'गे दूर न, तू संग लाग-लाग-लाग॥ १॥
जब पहले दिन मथुरा आये। यही कंस, ब्रजराज टिकाये।
लखि तेरी स्त्री हुते लुभाये। तरु असोक तेरे तर छाये॥
तिन हंसन के उड़े बसें यहं काग—काग—काग॥ २॥
ये सब रंग बिरंगी बेली। जुही मालती सुरंग नवेली।
मौरसिरी कन्नेर चमेली। छुई मुई सों नित अठखेली॥
करन न देगौ जरासंध है, नाग, नाग, नाग॥ ३॥
तेरे अंक सुरम्य अखारौ। हलधर ने निज हाथ सम्हारौ।
जदुबंसिन कौ जहाँ हुँकारौ। करत हुतौ तेरी जै कारौ।
होत यहाँ अब ये मरघट कौ, राग-राग-राग॥ ४॥

(१३)

जन्मभूमि जादौराई की, मति रोवै मन-भाई।
सदा न रहै बुढ़ापौ तेरौ, जब न रही तरुनाई॥
ओ मधु की लाड़ली मधुपुरी, सप्त-पुरिन में बाँकी।
तू गिरि गिरि कै सदाँ उठी है, मति भूलै वह झाँकी॥
मान लियौ छल कियौ लवन सों, रघुबंसिन जय पाई।
तबहु मरी जी उठी हुती तू, लेत नवल अँगराई॥
श्री शत्रुघ्न सँवार सुरन की तू सुभ पुरी बनाई।
चन्द्राकार चन्द्र बदनी छवि, जमुना मुकुर में छाई॥
सूरसेन ने तोय सजाई, जदुबंसिन रजधानी।
कसराज के राज भरें है, वरुन तिहारे पानी॥
उग्रसेन के राज, सत्य की धर्म धुरा पुनि थापी।
गिनि गिनि मारे बासुदेव ने बढ़े जहाँ जो पापी॥
हाट बार, घर, घाट, द्वार, वन, बाग, द्वार सब तेरे।
जो नभ कों चूमत हें है गये आज धूर के ढेरे॥
पै चलती फिरती छाया की, माया पे का रोंनो।
हम तुम दोउन कू, आँखिन में ही अँसुआ है पीनो॥
'राम' स्याम की पुरी, व्यर्थ है बीते पै पछतानौ।
या दुनियाँ की यही नीति है, अपने कों तरसानौ॥

(१४)

रे खंडहर के अंधे राजा! धिक् अँखमिच्चा उल्लू।
रात अंधेरी हू में का तू, बनौ रह्यौ घुसघुल्लू॥
जात लखे जब प्राण पियारे, जो नें कहु चिल्लातौ।
चलते समय नयन फल पाते, दर्सन तौ है जातौ॥
दै मनभावन के बिन जाये, तेरौ स्वार्थ न सधतौ।
कैसें या उजाड़पुर कौ तू, फिर महाराजा बनतौ॥
'कहै राम' चुप भयौ सोच ये धिक् पानी दो चिल्लू।
यो बैठौ इकलो मरघट पै, डूब न मरौ निठल्लू॥

(१५)

दै स्वरूप कौ दान सलौनों, जाय छिपे कित दान बिहारी।
चौ कर लै पतबार हमारी, छोड़ि गये यों बे पतवारी॥
नदवबा अरु नंदगाम के, माखन कौ वल हाय लजा री।
लाखन में भजि गये चोर से, छोड़ हमें यों सत्रु मँझारी॥
कहाँ रास अब रचत होउगे, वृन्दावन तजि विपिन-बिहारी।
हंस मानसर तजि पोखर तट बसत समय की है बलिहारी॥
लै मन गये मदन मोहन पै, दै छटाँक नहिं गये अहारी।
निरमोही सों मोह न कीजै, 'राम कहै' हम ये गिरधारी॥

(१६)

जाकै पाँय न फटी बिवाई, सो का जाने पीर पराई।
विकसन हू पायौ बसन्त नहिं, दई! दई पतझड़ बगदाई॥
लिखत भाग्य-रेखा बिरंच की, मसि मेरी ही पोत सुखाई।
तुम जन्मे हे बृद्ध बिधाता, कै कछु भोगी ही तरुनाई॥
त्यारी या अटपटी रीति सों, 'राम' होत है लोक-हँसाई।
पै हमने ब्रज के करील सों, करि लीनी है सहज सगाई॥
जो फलत है पतझर हू मैं, जापै चलत न तब चतुराई।
मै कुबरी चेली करील की, सूलन फूल समझि हरसाई॥

(१७)

गये स्याम लै सब रस-रंग।
वह हँसि बोलनि मन-मोहन की लै जीवन की गई उमंग।
का कबहू लखि हौं फिर नैनन, मन भावन कौ रूप त्रिभंग॥
के जीवित ही खसम भसम मलि, हौं जाऊँगी आज अनंग।
का प्रियतम जा निठुराई कौं, कीनों हो दो दिन सुख-संग॥
ऊधौ तुम दै जाते हमकों, तूँबा सेली कंथा चंग।
स्याम दरस की सुधा लुटी जब पी लेती निर्गुन की भंग॥

(१८)

मथुरा के खंडहर फिरै, सूलन में मुसकात ।
कुबजा ने सत्वर लखौ, दौड़ौ रथ एक आत ॥
दौड़ौ रथ एक आत, रुक्यौ ताके ही आगे ।
श्रीदामा तब उतरि परे, हरि-पद अनुरागे ॥
नाम गाम सब पूछ, कहत यों बानी मधुरा ।
"बरसाने अब बसौ, बहिन, तजि उजड़ी मथुरा ॥

(१६)

राधा प्यारी तकत है, बरसाने में राह ।
पठयौ तुमकों लैन मैं, है मिलिवे की चाह ॥
है मिलिबे की चाह, ढूँढ़तौ तुमकौ आयौ ।
बसिये चल दिन चार, गेह वह है न परायौ ॥
'राम कहै' सब दुःख सोक संसय भव-बाधा ।
नाम लिये ते मिटैं, तुम्हें टेरत सो राधा ॥"

(२०)

ह्वै पुलकित गद्‌गद् गिरा, सुन्यो जो राधा नाम ।
श्रीदामा के कंठ लगि, बोली कुबजा बाम ॥
बोली कुबजा बाम, कहाँ वे राजकुमारी ।
कहँ मैं चेरी, उनकौ भवन-बुहारन हारी ॥
कहँ पोखर कौ नीर, कहँ, गंगाजल की धार है ।
'कहै राम' कहँ कुबरी, कहँ वृषभानु कुमारि है ॥

(२१)

हौं अब जो ब्रज कों चलूँ, जग करि है उपहास ।
धरतौ हमकों नाम ही, चौं अब भरत उसास ॥

चौं अब भरत उसास, चले जब गये बिहारी।
ब्रज में ब्रज की नारि करिगी मेरी ख्वारी ॥
कीनो जग में जन्म, न कछु ऐसौ हौ करतव।
'राम कहै' जा पुण्य जाय जो ब्रज-बसिहौं अब ॥"

(२२)

"छोटौ मन मत कीजिये, जिय जनि होउ हिरास।
जब तक तन में स्वांस है, जीवन में विस्वास ॥
जीवन में विस्वास आस्था रहौ बनाये।
चिड़िया चुग गई खेत, होत फिर का पछताये ॥
करिय जतन 'कहि राम' लाभ हो चाहें टोटौ।
खोटे दिन जब होंय, करौ मति मन को छोटौ ॥

(२३)

यों बँधाय तेहि धीर, लीनी रथ बैठाय।
श्री राधा के बीर, बरसाने कों चल दिये ॥

अष्टम सर्ग

ब्रज - बास

(१)

बन्दौ ब्रज के गिरि नदी, लता सघन बन ताल।
रम जिनमें नर सों भये, नारायन नन्दलाल ॥

(२)

तिनहिं निहारत चली, उमग मन मोद बढ़ावत।
हरि के संगी जान, सबनकों सीस झुकावत ॥
बोलत कीर चकोर, कपोत मोर कहुं नाचत।
कहूँ सारिका बिकल, कृष्ण कहि टेर लगावत ॥

(३)

कहुं गायन के टोल, फिरत मुरझे ब्रज-बन में।
नहिं कुरंग चौकड़ी भरत, अकुलाये मन में ॥
मंदर कंदर मांहि अतहि सौं धारे अन्दर।
मुरझाई लखि परत मीन जल हू के अन्दर ॥

(४)

पथ वह, करवन. और सोनरेखा सुहावनी।
बहत लखी सुरसुती, ताप तीनों नसावनी ॥
श्रीदामा हरि लीला-स्थल चले दिखाते।
कुब्जा के दोऊ हाथ माथ तिनकौं नव जाते ॥

(१)

ताल, कुमुद बन और मार्ग देख्यौ वृन्दावन।
पग-पग बैठी जहां, लखत वृन्दा प्रिय आवन॥
कहुं कदम्ब के पुंज, मालती, फनस, लुभावन।
कहूं सोक हर हे असोक के कुंज सुहावन॥

(२)

कहूँ भ्रमर गुंजरें, कहूँ. बोलें पारावत।
स्यामा कुंहकत कहूँ कोकिल क्रीड़ा में रत॥
कुसुम सरोवर के तट कुसुम स्वरूप हरी के।
खिले हुते, जनु खुले पिटारे प्रकृति परी के॥

(४)

सोनजुही कहुँ, भीनी महकें मचक चमेली।
सीत पवन कहुँ करत, बल्लरिन सों अठखेली॥
बेली हिल हिल कहत मनों, 'चल हट बजमारे।
दूर सिधारे आज हमारे, प्रान पियारे॥'

(३)

कल कल मन्दहि मन्द भानुजा करत जल्पना।
कूलन सों सिर फोड़ रोवती कहूँ थमत ना॥
औंधी देखी पड़ी विपिन में भोजन-थारी।
जहां अरोगत हुते छाक हरि सखन मँझारी॥

(६)

पारासौली माहिं लखि पलासा वलि लखि प्यारी।
चन्द्र सरोवर परसि भयौ सीतल उर भारी॥
महारास-स्थली देख नेनन-जल डारौ।
हम मोतिन कौ मनहु अर्घ्य दै ताहि पखारौ॥

(१०)

बढ़ कछु आगे, मौरसिरी कौ मुकुट सम्हारे।
हरित तरुन की सुरँग काछिनी तन पै धारे॥
सुन्दर स्याम सरीर, नवल नीरद बपु बारे।
गोवर्धन गिरिराज, स्याम से सजे निहारे॥

(११)

तिन्हें लखत सब तपन बुझाई अपने तन की।
करन लगी दंडौत, परस छवि मन-मोहन की॥
देखत गिरि सर ताल, कमल जिनमें सरसाये।
खिसियायी सी हँसी हँसत, चहुं ओर सुहाये॥

(१२)

और बढ़ी तौ नन्दगाम कौ सिखिर सुहायौ।
गिरि चोटी पै नन्द-महल देखौ सकुचायौ॥
अति दूरहि ते ताहि कूबरी सीस झुकायौ।
बट सकेत निहारि प्रेम-सरबर रथ आयौ॥

(१३)

बरसाने की सींव लखाई पड़ी सुहाई।
रज के कन-कन माहि जहाँ रमि रहे कन्हाई॥
धौ, करील के कुंज, भ्रंग चहुं दिस गुंजारें।
मनों स्याम बहु रूप, राधिका नाम उचारें॥

(१४)

लता-लता में जहाँ छबी स्यामा की सरसै।
हर तरु में प्रतिबिम्ब प्रगट मोहन कौ दरसै॥

(७४)

जहाँ ललित लीला-रस लेहिवे कौं जग आता।
वर पर्वत कौ रूप बने जड़ अहैं बिधाता ॥[1]

(१५)

ताके बाग तड़ाग निहारि नेह-रजधानी।
रसिकन की सरवस्व, बसें जहँ राधारानी ॥
सो गिरि के सर्वोच्च सिखिर पै महल सुहायौ।
कुबरी ने लखि तुरत तहाँ रथ कौं रुकवायौ ॥

(१६)

दूरहि ते वह दंड प्रनाम करत अनुरागी।
उमगि उमगि सिर टेक, अटक डग धरिबे लागी ॥
सिंहपौर कर पार, रंग-महल जब आई।
दौड़ भक्त-वत्सला उठी गहि कंठ लगाई ॥

(१७)

देख अमित अनुराग नैन भर लाई कुबरी।
झुकि-झुकि परसन चहत चरन,पै सकत न उबरी ॥
बाहु-बंध में बँधी प्रिया गहि हिय सों जकरी।
रुक्यौ तनिक आवेग जोर कर बोली कुबरी ॥

---

१ पौराणिक मान्यता के अनुसार श्री कृष्ण की नित्य लीला का निरन्तर आस्वादन करने के लिए ब्रज-भूमि मे त्रिदेव सदा पर्वत रूप में निवास करते बतलाये गये हैं। गोवर्धन पर्वत को विष्णु रूप, बरसाने के पर्वत को ब्रह्मा का रूप तथा नन्दगांव के पर्वत को शिव रूप माना जाता है। ब्रह्मा के चार मुखों की कल्पना के अनुसार बरसाने के पर्वत के भी चार ही शिखर है, जिन पर क्रमशः दानगढ़, मानगढ, मोरकुटी तथा श्री राधिका जी का वर्तमान मन्दिर स्थित है।

(१८)

'सेस सारदादिक बखानें गुन नारद यों,
सनक सनन्दन जयति जग-बंदनी ।
जय रसराज की सिंगार-सार, रंगनी जै,
चरन सरन लै त्रिताप-दाप-खंडिनी ।।
'राम कवि' जिनपै मधुप ब्रजराज राजैं,
चरन-कमल, व्रज-रज मकरंदिनी ।
दैन्य-द्वंद-गंजनी, सकल फंद भंजनी जै,
भक्तन अनन्दनी जै वृषभानु नंदिनी ।।

(१६)

पैलें अपनाई त्यारे साँमरे कन्हाई, पीछे—,
मुँह कौं छिपाय भाजे, निपट दुखारी हौं ।
पकड़ी उठाय बाँह छाँह दै बसाय, फेरि—,
धार में बहाय गये, बिन पतवारी हौं ।।
भरिकैं किसोरी मोय भुजन बँधाई, धूरि—,
मूड़ पै चढ़ाई या कृपा की बलिहारी हौं ।
नवल किसोरी हे चकोरी ब्रज-चन्दना की,
राखिये चरन छांह, सरन तिहारी हौं ।।

(२०)

"बाहिन ! बिहाय गये तुमकों बिहारी, यह—,
सोच कें पियारी मन मति अकुलाहु री ।
एक बेरि जापै मन-मानिक है वारि दियौ,
जैसें निभ जाय ताहि, प्रेम सौं निभाहु री ।।
जेतौ होय रोष तेतौ हमपै निकारि लीजै,
'राम कहै' दोष जानि उनहिं लगाहु री ।
गुरु 'गिरिराज' सौं वियोग है गुपालजू कौ,
सबला सकल ताहि मिलिकैं उठाहु री ।।

(२१)

मथुरा बिराजें चाहें द्वारकाधिराज बनें,
चाहें कछु करें बे हमें लगत पियारे हैं।
तन सों गये तौ कहा, मन सों न पैहै जान,
प्रेम के कपाट जुड़े कठिन करारे हैं॥
अच्छे कै बुरे हैं, इन प्रानन पुरे हैं, टारे तऊ,
छिन न टरे हैं, भये नैनन सितारे हैं।
देस में रहौ कै परदेस में रहौ वे, काहू—
वेष में रहौ पै कान्ह प्रीतम हमारे हैं॥

(२२)

चित यह धार करो ब्रज में बिहार रहैं—
निकट तिहारे कबौं छिनहु न न्यारे हैं।
लाल जसुदा के बसुधा कौ बोझ हरिबे कों,
अनत सिधारे, जेहि हेतु अवतारे हैं॥
'राम कवि' करिये परेखौ मति याकौ भद्र,
एक के नहीं हैं, वह सबके सहारे हैं।
भक्तन के कारज कौ साधत समोद सदा,
मोर-पच्छ बारे स्याम, तोर-पच्छ बारे है॥"

(२३)

यों ताकों समुझाय दियौ ब्रजवास सुहायौ।
स्याम दरस फल फलौ ताहि स्यामा अपनायौ॥
बढ़न लग्यौ अनुराग नाथ में नित्य सबायौ।
पंथी बन-बन भ्रमत भ्रमत ज्यों निज गृह आयो॥

(२४)

तासों ब्रज की बाला लागीं नव-नेह बढ़ावन।
तापे जसुमति मातु लाड़ हू लगीं लड़ावन ॥
ब्रज-वासिन के सरल प्रेम में कुबरी पागन।
घर बाहर के काज सबहि के लगी सम्हारन ॥

(२५)

दुखियन कों दुख देखि लगी सो धीर धरावन।
वृद्धन के पद सेय लगी मन में सुख पावन ॥
रोवत बालनि लगी कूबरी गोद खिलावन।
यों समाज की करन लगी सेवा अति पावन ॥

(२६)

दीनन सेवा माहिं समय सो समुद लगावत।
रोगिन के संग राति राति जागत उमगावत ॥
श्री राधा चरणारविंद रस-सागर न्हावत।
जन-जन में घनस्याम रूप लखि हिय हुलसावति ॥

(२७)

यों समोद ब्रजवास करत हरि-लीला गावत।
देख स्याम के धाम, नीर नैनन भरि लावत ॥
करत ललन की याद मात दारुन दुख पावत।
तब चरनन धर सीस ताहि, बहुबिधि समझावत ॥

(२८)

कबहुँ सरस रसधार स्यांम-घन कौं लखि आवत।
मन मसोस नभ लखति बिजुरी को इतरावत ॥
इन्द्रधनुष के रंग, लखत नभ के परिधानन।
मन सोचत 'का आय रहे है इत गिरिधारन ॥'

(२६)

छुरि पतझड़ में झरत पात बेली लखि पीरी।
अपनी सी मन मान, साँस छोड़त सो सीरी ॥
दावानलि से दहै दिबारी दीपक ताकों।
पै होरी की ज्वाल, माल सी सीतल याकों ॥

(३०)

एक बेर बलराम आय ब्रज रास रचायौ।
सूखे जीवन माहिं याहि तब कछु रस आयौ।
यों जब कछु संदेश द्वारका सों इत आयौ।
ब्रज-बालन के संग, मोद कुबजा ने पायौ ॥

(३१)

स्याम विरह असिधार, सम्हर सम्हर यों धरत पग।
राधा नाम अधार, चलत दूबरी कूबरी ॥

—०—

नवम सर्ग

विसर्जन

(१)

उतै द्वारका राजत यादौराय ।
युद्ध पंडनि उन दियौ जिताय ॥

(२)

तब जदु बंसिन के बल कौ बल पारावार ।
उमड्यौ मरजादा के तोरि कगार ॥

(३)

सोचत मन अति दुखी द्वारकानाथ ।
उचित न अब इनके सिर मेरौ हाथ ॥

(४)

बुझत समैं ज्यों दमकय दीपक लोय ।
हाल भयौ जदुबंसिन कौ है, सोय ॥

(५)

अहंकार में हँसि करि मदिरा पान ।
भले बुरे कौ भूले, ये सब ग्यान ॥

(६)

हँसी खुशी में कट गये, सुख के बासर चार ।
पर दुस्तर तरिबौ अहै, दुख सागर की धार ॥
दुख-सागर की धार, ज्वार जब ही उमगावै ।
जो जामें फँसि जाय, पार नहिं सो लहि पावै ॥
'कहै राम' कटि मरे परस्पर, लड़ि जदुवंसी ।
रह गये देखत कृष्ण, प्रकृति मुख फेरि जो बिहँसी ॥

(७)

बज्रनाभ इक बचि रहे, राखन कौं जदुबस
परपोते भगवान के, चन्द्र-बंस अवतस ।
चन्द्र-बंस अवतस, संग लै अरजुन आये
दै मथुरा कौ राज, लाय इत उन्हे बसाये ।
जन्मभूमि जदुराज की, तिन सुन्दर मन्दिर रचे
बज्रनाभ पालन लगे, बसत द्वारका जे बचे ।

(८)

कुबरी ने इतमे सुनौं जदुबसिन कौ हाल
लै आज्ञा ब्रज सौं चली, मथुरा कौं तत्काल ।
मथुरा कौ तत्काल चली, बहली जुड़वाई
सुन ताकौ आगमन करी नृप ने पहुनाई ।
मातामहि सौ मान करि, चरनन में पगरी धरी
भुज भरि कंठ लगाय कै, लगी असीसन कूबरी ।

(६)

निज महलन ते लाय पुनि, सिंहासन बैठाय
कियौ अमित सत्कार नृप, बज्रनाभ हरसाय ।।
बज्रनाभ हरसाय जोड़ कर शीश झुकाये
करिय छमा अपराध, कष्ट बहुबिधि जे पाये ।
करौ आपकी टहल मैं बसहु यहां भगवंत भज
हौन न दुंगो कष्ट अब, कछु तुमको मैं महल निज ।।

(१०)

बेटा त्यारो मुख लखे, पूरी सब मम आस
उजड़ी मथुरा बसि गई, मो मन भयौ हुलास ।।
मो मन भयौ हुलास, आस अब एकहि बाकी
जितनी जल्दी होय करो प्रीतम की झाँकी ।।

'राम कहै' जुग बीति गये, पर भयौ न भेटा।
तू कर सुख सों राज, मिलत मैं उनसों बेटा॥

(११)

भई विदा यों स्याम की, जन्मभूमि पै जाय।
केसव के सम्मुख खड़ी, नैनन नीर बहाय॥
नैनन नीर बहाय, देह की सुधि बिसराये।
आँखि आँखि में डारि, प्रान में प्रान रमाये॥
मिली ज्योति में ज्योति यों, तन तजि बृन्दावन गई।
'राम कहै' घनस्याम के, चरन-कमल भ्रमरी भई॥

(१२)

कुबरी तजि देह गई सुरलोक, सुनी चरचा नृप दौरि कै आये।
चन्दन सों चिनवाई चिता, पुखराज अरु पन्ना विमान जड़ाये॥
कीन्हीं पितामही जैसी क्रिया, कवि 'राम' सनेह के नीर बहाये।
ऐसी लही गति कूबरी ने, जेहि कौं सुर-सिद्ध रहैं ललचाये॥

(१३)

इमि ये कुबरी की कथा सुखदा, 'कवि राम' ने राम कृपा सों बखानी।
रस छंद प्रबंध न जामें कछू, ब्रजराज की है पर प्रेम-कहानी॥
कवि कोसत हैं जेहि कौं अबलौं, हम ताकौ चरित्र-रच्यौ ब्रज-बानी।
बिगड़ी बनि जाय, हियें हुलसाय, चितैं चितलाय जो राधिका रानी॥

(१४)

जेहि पै नहिं दीठ परो जग की, ये कथा बिसरे एक भक्त की है।
गृह त्यागी न काहू विरक्त की है, यह जीवन में अनुरक्त की है॥
'कवि राम' न किन्नरी सुन्दरी की, परलोक न, लोकके रक्त की है।
है कुअङ्गनी की ये सुरंगिनी की, घटना घनस्याम के भक्त की है॥

(१५)

नित्य नवीन प्रवीनन कों, रस रंग भरी अनुराग की लीला।
ममता की, भरी ममता की अहै, ब्रज भूषण के ब्रज राग की लीला ॥
'कवि राम' ये है मन मोहन की, मन-मोहिनी के वो सुहाग की लीला।
पत दान किये, पति पाय लिये, पति त्याग गये दुरभाग्य की लीला ॥

(१६)

दुखियारी गई दुतकारी सदाँ, कवि देत रहे अबलों जेहि गारी।
दिन चार लह्यौ सुख चाँदनी कौ, नित जीवन दीप में पाली अँध्यारी ॥
अर्ध के जीवन जीती रही, अरु पीती रही अँसुआ, पतिबारी।
दान कियौ तन प्रानन कौ, तेहि आय सम्हारिये दान-बिहारी ॥

(१७)

पितृपक्ष की पंचमी, पूर्यौ चरित उदार।
दो सहस्त्र अट्टारहीं, विक्रमि तिथि गुरुवार ॥

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	छंद	पंक्ति	वर्तमान पाठ	शुद्ध पाठ
७	१८	१	आय तिहारी गही सरना	गुरु ! आय तिहारी गही सरना
७	१६	४	लोन, तो	लोनी, सो
७	२०	२	दुलारे	दुधारे
८	२४	३	सु	× (अनावश्यक है)
११	३३	५	सूर सकपके	सूर सकपकाने
१४	१	१	मन निकसत	मन निबसत
१५	६	४	मिठबोली	मिठ बोली
१६	१४	३	तो–से	तोसे
१६	१५	१	तहा तहा	तहाँ
१७	२०	३	बसै	बसैहै
१८	२७	२	ज्यौं	त्यौं
३१	१६	४	जाति	जानि
३२	२३	४	रस-नागरी	रस-गागरी
३८	१४	४	चेरी आकर भले	चेरी के चाकर
३८	१५	५	उमासिन	उमासति
४१	१२	१	आवत	आवते
४२	१५	१	सब	सबै
६५	८	२	जा माता	जामाता
६५	६	४	इत मथुरा	इत नगर
६६	१२	७	स्त्री	सृी
६८	१५	८	ये गिरधारी	यें निरधारी
७१	३	३	अन्दर	बन्दर
७१	४	१	पथ वह	पथवह (नदी)
७२	३	२	घमत ना	थमत ना
७२	६	१	लखि पलासा वलि	पलासावलि
७२	६	४	हम मोतिन	हग मातिन
७५	१८	७	गुरु	गरु

पृष्ठ	छंद	पंक्ति	वर्त्तमान पाठ	शुद्ध पाठ
७६	२१	२	करैं वे हमें	करैं, हमें
७६	२१	५	टारे तऊ	टारें
७७	२४	१	ब्रज की बाला	ब्रज की बाल
७८	२	१	जदु बंसिन के बल कों बल	जदुबंसिन बल कों

लेखक के दिल्ली रहने और पुस्तक के मथुरा छपने के कारण प्रूफ की भूलें यथा स्थान रह गई हैं, इसका हमें खेद है। इनका निराकरण तो अगले ही संस्करण में संभव होगा, परन्तु कुछ ऐसी भूलें भी हैं जिनकी ओर पाठकों का ध्यान दिलाये बिना कबिता के अर्थ में व्याघात हो सकता है। उनका संकेत क्षमा पूर्वक यहाँ दिया जा रहा है।